Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मर्यादाः कवयस्ततः (ऋग्वेद)

आर्य मर्यादा

प्रतिनिधि सभा पंजाब का मुख पत्र

वषय में।—

ं की अन्तःसाक्षी

वेद स्वरूप निर्णय

(विशेषांक)

लेखक :
मदनमोहन विद्यासागर

वर्ष २ अंक १३ इस अंक का ८० पैसे वार्षिक १० रुपया	सम्पादक— जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री फोन ५६२१६३	१८ फाल्गुन वि० २०२६ दयानन्दाब्द १४५ १ मार्च १९७० रविवार सृष्टि सं० १९६०८५३०६९

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विदेशों में वेद सन्देश

श्रद्धेय पूज्य श्री स्वामी आनन्द सरस्वती जी महाराज का पत्र—

मेरे प्यारे श्री जगदेवसिंह जी। सप्रेम नमस्ते।

दक्षिण अमेरीका, उत्तर अमेरीका, ट्रिनीडाड, ग्याना तथा योरुप के कुछ देशों में पांच महीने मैंने वेद संदेश सुनाया। दक्षिण अमरीका में दो मास में ७० भाषण दिये। और प्रातः सायं सुरीनाम के नीग्रो, डच, चीनी तथा हिन्दु साधकों को योग साधना करवाता रहा। एक पठित नीग्रो को वैदिक धर्म में प्रवेश कराया। वह अब डच भाषा में सत्यार्थप्रकाश का अनुवाद कर रहा है। ट्रिनीडाड में दो सज्जनों को वानप्रस्थ में प्रवेश करवा कर उन्हें उपदेशक बना दिया। अमेरीका में एक अमेरीकन सज्जन को संन्यास दिया तथा उसका नाम नित्यानन्द सरस्वती रक्खा गया। उत्तर अमेरीका के सज्जन योग के प्रति बहुत रुचि रखते हैं कितने ही योग आश्रम बना रखे हैं।

अमरीका से मैं २० दिसम्बर को लन्दन पहुंचा ताकि अफ्रीका जा सकूं, परन्तु मेरे शरीर को फलू ने घेर लिया। उन दिनों लन्दन में ७ दिनों में ४ हजार आदमी फलू से मृत्यु का ग्रास बन गये। मेरा डाक्टर कहता था कि ६० वर्ष के ऊपर के लोग जितने फंसे थे सब मर गये हैं केवल तूं ही बच कर निकल आया है। शरीर की अत्यन्त निर्बलता तथा रोग में ही बम्बई चला आया तथा शरीर की चिकित्सा होने लगी। अब मेरा शरीर ठीक है। और शीघ्र ही शरीर ठीक होने पर मैं सेवा कार्य शुरू कर दूंगा।

बम्बई १६.२.७०

सेवक

आनन्द स्वामी सरस्वती

परमपिता प्रभु से आर्यजगत् प्रार्थना करता है कि पूज्य स्वामी जी महाराज को शीघ्र पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करे।

—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेदमन्त्रार्थप्रवचन

पुनरीश्वरविषयमाह ॥

फिर ईश्वर विषय में अगले मन्त्र में उपदेश किया गया है ॥

गायत्रेण प्रतिमिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् । वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥ ऋ० १.१६४.२४

पदार्थः—(गायत्रेण) गायत्री छन्दसा (प्रति) (मिमीते) रचयति (अर्कम्) ऋग्वेदम् (अर्केण) ऋचां समूहेन (साम) सामवेदम् (त्रैष्टुभेन) त्रिवेदविद्यास्तवनेन (वाकम्) यजुः (वाकेन) यजुषा (वाकम्) अथववेदम् (द्विपदा) द्वौ पादौ यस्मिँस्तेन (चतुष्पदा) चत्वारः पादा यस्मिंस्तेन (अक्षरेण) नाशरहितेन (मिमते) (सप्त) गायत्र्यादिसप्तछन्दोन्विताः (वाणीः) वेदवाचः ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यो जगदीश्वरो गायत्रेणार्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाऽक्षरेण वाकेन वाकं सप्त वाणीश्च प्रति ।ममीते तज्ज्ञानं ये मिमते ते कृतकृत्या जायन्ते ॥

भावार्थः—येन जगदीश्वरेण वेदस्थान्यक्षरपदवाक्यछन्दोऽध्यायादानि निर्मितानि तस्मै सर्वे मनुष्या धन्यवादं दद्युः ॥

भाषार्थः—हे विद्वानो जो जगदीश्वर (गायत्रेण) गायत्री छन्द से (अर्कम्) ऋक् (अर्केण) ऋचाओं के समूह से (साम) साम (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् छन्द वा तीन वेदों की विद्याओं को स्तुतियों से (वाकम्) यजुर्वेद (द्विपदा) दो पद जिसमें विद्यमान वा (चतुष्पदा) चार पद वाले (अक्षरेण) नाशरहित (वाकेन) यजुर्वेद से (वाकम्) अथर्ववेद और (सप्त) गायत्री आदि सात छन्द युक्त (वाणीः) वेदवाणी को (प्रति, मिमते) प्रतिमान करता है और जो उसके ज्ञान को (मिमते) मान करते हैं वे कृतकृत्य होते हैं ॥

भावार्थः—जिस जगदीश्वर ने वेदस्थ अक्षर, पद, वाक्य, छन्द, अध्याय, आदि बनाये हैं उसको सब मनुष्य धन्यवाद देवें ॥

—ऋग्वेदभाष्य (ऋषिदयानन्दकृत)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

२. (क) किं गायत्र्यादिछन्दोरचनमपीश्वरेणैव कृतं ? इयं कुतः शङ्काभूत् ?, किमीश्वरस्य गायत्र्यादिछन्दोरचनाज्ञानं नास्ति? अस्त्येव तस्य सर्वविद्यावत्त्वात् । अतो निर्मूला सा शङ्कास्ति ॥

भाषार्थः—(प्रश्न) क्या गायत्री आदि छन्दों का भी रचन ईश्वर ने ही किया है ? (उत्तर) यह शङ्का आप को कहां से हुई ? (प्रश्न) मैं तुम से पूछता हूं क्या गायत्र्यादि छन्दों में रचने का ज्ञान ईश्वर को नहीं है ? (उत्तर) ईश्वर को सब ज्ञान है। अच्छा तो ईश्वर के समस्त विद्यायुक्त होने से आप की यह शङ्का भी निर्मूल है।

(ख) वेदेषु शब्दार्थसम्बन्धाः परमेश्वरादेव प्रादुर्भूताः, तस्य सर्वविद्यावत्त्वात् ॥

भाषार्थः—वेदों में जितने, शब्द, अर्थ और सम्बन्ध हैं वे सब ईश्वर ने अपने ही ज्ञान से प्रकट किये हैं, क्योंकि वह पूर्ण विद्या-वाला है ॥ —ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (वेदोत्पत्ति-विषय)

३. (प्रश्न) वेद नित्य हैं वा अनित्य ? (उत्तर) नित्य हैं क्योंकि परमेश्वर के नित्य होने से उस के ज्ञानादि गुण भी नित्य हैं। जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म, स्वभाव नित्य और अनित्य द्रव्य के अनित्य होते हैं। (प्रश्न) क्या यह पुस्तक भी नित्य है ? (उत्तर) नहीं क्योंकि पुस्तक तो पत्र और स्याही का बना है वह नित्य कैसे हो सकता है ? किन्तु जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध हैं वे नित्य हैं। (प्रश्न) ईश्वर ने उन ऋषियों को ज्ञान दिया होगा और उस ज्ञान से उन लोगों ने वेद बना लिये होंगे ? (उत्तर) ज्ञान ज्ञेय के विना नहीं होता, गायत्र्यादि छन्द षड्जादि और उदात्ताऽनुदात्तादि स्वर के ज्ञान पूर्वक गायत्र्यादि छन्दों के निर्माण करने में सर्वज्ञ के विना किसी का सामर्थ्य नहीं है कि इस प्रकार सर्वज्ञानयुक्त शास्त्र बना सकें। हां, वेद को पढ़ने के पश्चात् व्याकरण निरुक्त और छन्द आदि ग्रंथ ऋषि मुनियों ने विद्याओं के प्रकाश के लिये किये हैं। जो पर-मात्मा वेदों का प्रकाश न करे तो कोई कुछ भी न बना सके, इसलिये वेद परमेश्वरोक्त हैं उन्हीं के अनुसार सब लोगों को चलना चाहियें ॥

—सत्यार्थप्रकाश, सातवां समुल्लास (ऋषिदयानन्द रचित)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेदोपदेश-प्रयोजन

(१) महर्षि दयानन्द ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र (मण्डल १, सूक्त १ मन्त्र १) के भावार्थ में लिखते हैं—

"पितृवत्कृपायमाण ईश्वरः सर्वविद्याप्राप्तये सर्वजीवहिताय वेदोपदेशं चकार। यथा पिताऽध्यापको वा स्वं पुत्रं शिष्यं च प्रति त्वमेवं वद्, एवं कुरु, सत्यं वद्, पितरमाचार्य्यं च सेवस्व, अनृतं मा कुरु—इत्युपदिशति'—तथैवात्र बोध्यम्। वेदश्च सर्वजीवकल्याणार्थमाविर्भूतः। एवमर्थोऽत्रोत्तमपुरुषप्रयोगः। वेदोपदेशस्य परोपकारार्थत्वात्॥"

भावार्थ भाषाः—पिता के समान कृपाकारक परमेश्वर सब जीवों के हित और सब विद्याओं की प्राप्ति के लिये कल्पकल्प की आदि में वेद का उपदेश करता है। जैसे पिता वा अध्यापक अपने शिष्य वा पुत्र को शिक्षा करता है कि "तू ऐसा कर वा ऐसा वचन कह, सत्य वचन बोल, इत्यादि शिक्षा को सुनकर बालक वा शिष्य भी कहता है कि सत्य बोलूंगा, पिता और आचार्य्य की सेवा करूंगा झूठ न कहूंगा, इस प्रकार जैसे परस्पर शिक्षक लोग शिष्य वा लड़कों को उपदेश करते हैं—वैसे ही "अग्निमीळे" इत्यादि वेद मन्त्रों में भी जानना चाहिये। क्योंकि ईश्वर ने वेद सब जीवों के उत्तम सुख के लिये प्रकट किया है। इसी "अग्निमीळे" वेद के उपदेश का परोपकार फल होने से इस मन्त्र में 'ईडे' यह उत्तम पुरुष का प्रयोग भी है॥"

ग्राहकों को सूचना

गत अंक में दी गई सूचना को स्मरण कराया जाता है कि इस विशेषाङ्क के पश्चात् ८.३.७० का सामान्य अंक प्रकाशित नहीं होगा। विशेषांक के कारण आर्यमर्यादा के कार्यालय का अवकाश रहेगा। तत्पश्चात् यथा पूर्व १५.३.७० का अंक प्रकाशित होगा। कृपया ग्राहक महानुभाव इस सूचना को अंकित कर लेवें।

—प्रकाशक आर्यमर्यादा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सम्पादकीय—

"सब सत्य विद्याओं का पुस्तक वेद है वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"

ऋषिदयानन्द ने आर्यसमाज के इस नियम का निर्माण करते समय सब आर्यों को आदेश और उपदेश दिया कि—

वेद ज्ञान को ग्रहण करना और कराना आर्यों का परमधर्म है। इसी कारण ऋषि ने वेदभाष्य आदि ग्रन्थों की रचना की।

यह वेदस्वरूप निर्णय विशेषाङ्क भी इसी प्रयोजन से प्रेरित होकर निकाला गया है। विद्वान् लेखक ने वेद के सम्बन्ध में अपने गहन स्वाध्याय के बल पर अपने विचार प्रकाशित किये हैं। हो सकता है कि किन्हीं विद्वानों को लेखक से मत भेद हो, परन्तु अंक की उपयोगिता में कुछ कमी नहीं। हमारा सदा यह विचार रहता है कि वेद के सम्बन्ध में साहित्य प्रकाशित किया जावे 'आर्यमर्यादा' को द्वारीकृत्य इस शुभ कार्य को आर्य जनता के सामने हम प्रस्तुत करते आ रहे हैं। आशा है कि ग्राहक एवं पाठक महानुभाव इस विशेषाङ्क से ही पूरा लाभ उठावेंगे।

१.३.७० विनीत:—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

विद्वानों की सेवा में:-

दो शब्द कहने आवश्यक हैं। आज से लगभग पैंतीस वर्ष पूर्व मैं विश्वभर में वेदाध्ययन-अध्यापन कराने वाली एक मात्र संस्था गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी हरिद्वार (उ. प्र.) में त्रयोदश श्रेणी में वेदाध्ययन करता था।

मुझे वेदाध्ययन में दशमश्रेणी (१९३३-३४ सन्) से ही रुचि रही है। उस समय जो भी पढ़ता था, नोट करता जाता था। जब महाविद्यालय में आया, तब इनका नियमित स्वाध्याय प्रारम्भ किया।

उस समय जो धारणा वेदों के विषय में मेरी बनी थी, आज तक वैसी ही है। उसमें परिवर्तन नहीं आया है। यदि कुछ परिवर्तन आया है, तो यह कि जहां उस समय वह धारणा कुछ अस्पष्ट व सन्दिग्ध थी, वहां इस समय वह अधिक स्पष्ट और असंदिग्ध हो गई है।

मैंने जो कुछ भी वेदों का अध्ययन किया है, उसके आधार पर कह सकता हूं कि इनमें मुझे कोई भी बात 'बुद्धिविरुद्ध' 'विज्ञान प्रतिकूल 'तर्काप्रतिष्ठ' नहीं मालूम हुई। इनमें लिखी सब बातें सर्वकाल-सर्वावस्थासु एक जैसी रहने वाली प्रतीत हुईं। मुझे इनमें वर्णित कोई उपदेश या सिद्धान्त ऐसा नहीं मालूम पड़ा, जिसे पुरातन अर्थात् अनद्यतन भूत का ही कह सकें। सब में अब भी वैसी ही नवीनता है, जैसे पहले थी। कोई नई बात इस समय के मनुष्य ने मानवाभ्युदय के लिये नये तौर से जानी नहीं है। मानव जीवन के लिये उपयोगी सभी बातों का संग्रह इसमें बड़ी उत्तमता से किया गया है। इनमें सभी बातें सार्वदेशिक सार्वकालिक सार्वजनिक हैं। यही इनकी विशेषता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उसी समय अध्ययन काल में एक दिन उपनिषदों का पारायण कर रहा था। मनमें यह इच्छा पैदा हुई कि जो उपनिषदें वेदों की स्तुति करती हैं, देखूं तो उनके अन्दर वेदों के विषय में लिखा क्या है? उस समय समस्त उपनिषदों को पढ़ा। उनमें जहां जहां पर वेदों के विषय में संकेत थे, सबका संग्रह किया और "उपनिषदों में वेदों का स्वरूप" शीर्षक से एक विस्तृत लेख देहली से निकलने वाले 'सार्वदेशिक' मासिक के दो अंकों में प्रकाशित करवाया।

तत्काल उसी ढंग से चारों वेदों को भी अधिक गम्भीरता से देखना प्रारम्भ किया। वेदों में अपने विषय में क्या कहा गया है? उसका परिणाम इस निबन्ध का प्रथम संस्करण था जो कि उस समय स्वाध्याय मण्डल [औंध जि० सातारा] से प्रकाशित हुआ था। इनके विषय में और भी बहुत सा विचार करने योग्य क्षेत्र है, पर मैंने उस समय उधर ध्यान नहीं दिया। अब अन्य विषयों पर भी विचार किया है जिसका गर्भ में परिपाक हो चुका है, प्रसव की प्रतीक्षा है। विद्वानों ने उसकी बहुत प्रशंसा की। यहां तक कि चतुर्वेद भाष्यकार श्री पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार ने तो आर्य मित्र में एक विशेष वक्तव्य उस पर दिया।

उसका दूसरा संस्करण संशोधित परिवर्धित करके १९५० में निकाला। जब मैंने इसका द्वितीय संस्करण आर्य वैदिक विद्वानों की सेवा में सम्मत्यर्थ समालोचनार्थ व संशोधनार्थ भेजा तो सब विद्वानों ने भूरी भूरी प्रशंसा की और उत्तम निर्देश दिये। मैंने उन सबका इस संस्करण में यथा स्थान उपयोग किया है और यह अब पुनः सर्वथा संशोधित परिवर्धित करके प्रकाशित किया जा रहा है।

विश्व के प्रायः सभी वेदमनीषी विद्वानों का मत है कि वेद (और वैदिक वाङ्मय) अतीव विस्तृत होने के साथ साथ विश्व में उपलब्ध पुस्तकों में अथवा ज्ञान की दृष्टि से प्राचीनतम एवं अत्यन्त गंभीर भी है। विश्व के अत्यन्त गौरवशाली प्रान्त इस भारतवर्ष के लोगों को अपने जीवन में सदा इन वेदों से प्रकाश और प्रेरणा प्राप्त

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

होती रही है, यहां के लोगों की वैदिक आदर्शों और भावनाओं में अगाध श्रद्धा रही है और चिरकाल से यहां 'वैदिक साहित्य' का अनुशीलन होता रहा है।

मेरी यह दृढ़ धारण है कि न केवल भारतीय-संस्कृति के अभ्युत्थान के लिये, किन्तु समस्त मानवसमाज के कल्याण के लिये भी वैदिक आदर्शों और वैदिक उदात्तभावनाओं की आवश्यकता है।

भारतीय आचार विचार में वेदों को बहुत आदर मिला है, ये भारतीय संस्कृति के मूलाधार और अक्षयनिधि समझे जाते हैं। चिरन्तन काल से ये भारतीयों के लिये प्रकाश स्तम्भ रहे हैं। भारतीय समाज के संघटन और उसकी जीवनचर्या नियमन व व्यवस्थापन के साथ साथ उसकी आध्यात्मिक तथा अन्य उदात्तभावनाओं की प्रेरणा में भी इनका प्रमुख स्थान रहा है।

वेदों से भारत-जाति को समय समय पर ओज और बल प्राप्त होता रहा है, इनके कारण ही अब तक भारतीय संस्कृति अजर और अमर है।

'वेदों में ऐसा ज्ञान निहित है, जिसके आधार पर भारतीय किसी भी संस्कृति, साहित्य या सभ्यता से अभिमान पूर्वक टक्कर लेने में नहीं हिचकता, बल्कि मुकाबले में सदा विजयी होता है।'

वेदों का यह महल और इनका इतिहास में यह प्रभाव केवल भारतीयों तक ही सीमित नहीं। मानव मात्र के उत्थान और कल्याण की वास्तविक व्यावहारिक और सार्वभौम उत्तम प्रेरणायें वेदों में निहित हैं। जब कहीं भी, कुछ भी और कोई भी ज्ञानसाधन (विद्यादीप) तथा ज्ञानशाला (विद्यापीठ) मानवजाति के पास नहीं थे, तब सर्वत्र भूमण्डल पर वेदों का ही एक छत्र साम्राज्य था, इनका ही अखण्ड प्रभाव था, इनका ही सुखदशासन और इनकी ही सर्वतोमुखी प्रतिष्ठा थी। मनुष्यों ने जो कुछ सुना-वेदों से ही, जो कुछ सीखा-वेदों से ही, जो कुछ देखा-वेदों से ही, जो कुछ विचारा-वेदों की ही प्रेरणा से।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेदों में हमें 'मानव धर्म', शुद्धदर्शन और इष्टतमकर्म सम्बन्धी प्रचुर सामग्री मिलती है। मानवों के पारस्परिक सम्बन्ध की ही नहीं, अपितु प्राणीमात्र में परस्पर अहिंसाभाव के भावों की ज्योति वेद दीप से निरन्तर जलती है। मतमतान्तर के राज भोजन से तुष्ट-पुष्ट पहलवानों के खण्डमण्डनात्मक दाँवपेचों से सर्वथा विमुक्त यथार्थ व्यवहार की बोधक पर्याप्त सामग्री वेदों में यत्रतत्र सजी पड़ी है। भिन्न भिन्न मताचार्यों के आत्म विज्ञापनों के कोलाहल का दृश्य इन में देखने को क्या, सूंघने को भी नहीं; वितण्डावादियों से उलझा दी गई 'दृष्टियों' से यह शून्य है। इनमें मानव को मतवाद को भूल-भुलैया में न फंसा कर शील, योग समाधि तथा प्रजा द्वारा और विद्या (अध्यात्म केवल चेतनवाद) अविद्या (आधिभौतिकवाद, केवल जड़वाद) तथा ब्रह्म (ज्ञान) तथा क्षत्र (कर्म) श्रद्धा (सत्य-जिज्ञासा) तथा मेधा (धारणावती बुद्धि) के समुचित समन्वय द्वारा शान्ति प्राप्त करने का मार्ग बताया है। हम कह सकते हैं कि—

व्यवस्थितार्यमर्यादः,कृतवर्णाश्रमस्थितिः।
वेदैस्तु रक्षितो लोकः, प्रसीदति न सीदति ।।
यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो विदुषा परिकीर्त्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे, सर्वज्ञानमयो हि सः ।।

ज्यों ज्यों वेदों का अध्ययनाध्यापन और मनन निदिध्यासन किया गया है, त्यों त्यों इन के सम्बन्ध में यह धारणा दृढ़ होती जा रही है कि इनमें जो ज्ञान, जो सिद्धान्त या जो सामाजिक व्यवहार वर्णित हैं, वे बुद्धिपूर्वक युक्तियुक्त और सार्वभौम हैं। उनको अप-रिपक्व, अविकसित अथवा अशिक्षित जनों द्वारा हांकी हुई गप्पें या अज्ञानी भयभीत लोगों की प्रकृति के अज्ञान द्वारा की गई स्तुति नहीं माना जा सकता।

ये सब सत्यविद्याओं के पुस्तक हैं, ज्ञान के आदि प्रकाशक हैं सब भाषाओं के उद्भवस्थान, सार्वकालिक सर्वजनीन और सार्वभौम नियमों के प्रतिपादक, सुपथनायक, मानव समाज सम्बन्धी सब क्रिया-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कलापों के विज्ञापक और ज्ञानविज्ञान का आगार होने से ये वेद प्रत्येक देश जाति समाज और व्यक्तियों के लिये सर्वकाल सर्वावस्थासु उपादेय हैं और रहेंगे। वास्तव में ये सर्वविध 'पूर्वापरसंगतज्ञान' के ईश्वरीय विश्वकोष हैं।

असंख्यक वर्ष (कोटि वर्ष सहस्राणि) के बाद भी 'अग्नि वायु आदित्य, अंगिरा' ऋषियों द्वारा प्रसारित यज्ञमय आदि पुरुष की इस अमर वाणी (=देवकाव्य) में वही व्यावहारिकता, सजीवता, सत्यता और मधुरता है। इस विशाल कालान्तर में मनुष्य के 'गुण कर्म स्वभाव' में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है; जो भेद है वह इसके आचार विचार आहार विहार वेशभूषा आलाप भाषा की पद्धतियों या नामरूपों में हुआ है। स्त्री पुरुषों का आकर्षण मनुष्य मनुष्य में मित्र सहायभाव अनादिकाल से वैसा ही चला आ रहा है। मूलतः उस सुदूर अतीत के मनुष्य और अद्यतनीय (अपटुडेट) मनुष्य की समस्यायें एक हो हैं, जो भेद है, वह इनके नये रूप में प्रस्तुत करने में है। उस दिन की तरह आज भी (मनुष्य के वास्तविक गुण कर्म स्वभाव के अनुसार) उन समस्याओं को हल करने की क्षमता व पूर्णता 'वेद चतुष्टय' की नित्य नूतन शिक्षाओं में विद्यमान है। ये अमृत उपदेश सब प्रकार से मनुष्य को ऊंचे स्तर पर पहुंचाने वाले और परमशान्ति प्रदान करने वाले हैं; इन पर आचरण करने से सर्वत्र स्वस्तिभावना (वेल्फेयर), शान्तिव्यवस्था (पीस) और अभय वातावरण (सेक्यूरिटी औफ लाइफ) उत्पन्न हो सकता है। इसलिये उस समय की तरह आज भी हमें वेद की कल्याणी वाक् के अध्ययन व प्रचार की आवश्यकता है। सर्गादि से सर्गान्त तक वैदिक काल समझ कर हमें वेदों की शिक्षाओं पर आचरण करना चाहिये।

एक प्रश्न है। ईश्वर वेदों का रचियता है या आविर्भावकर्त्ता। रचयिता अर्थात् निर्माता। ईश्वर ज्ञान को पैदा करता है। यदि ऐसा हो तो 'वेदज्ञान' नित्य (न ममार न जीर्यति) न रहे, क्योंकि वह उत्पत्तिशील हो गया। आविर्भावकर्त्ता का भाव है, प्रकट करने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वाला प्रकाशक आविष्कारक। क्योंकि वह नित्य है तो उसका ज्ञान भी नित्य होना चाहिए। परमेश्वर इस नित्य ज्ञान को ऋषि हृदयों में आविर्भूत करता है। (ऋग् १०.७१.१; अथर्व १९.४३.२; ऋ० ९.७३ ८) सर्गादि में उनके हृदयों में ज्ञान का प्रकाश फैला देता है। यही हमें अधिक युक्तियुक्त मालूम होता है। परन्तु यदि रचयिता और आविर्भाविकर्त्ता एक भाव वाची हैं, तो उसे कुछ भी कहा जा सकता है। परमेश्वर जगत् का रचयिता है, वैसे ही वह ऋग्, यजुः साम, अथर्व का रचयिता है। जैसे प्रलय काल में जगत् अप्रत्यक्ष हो जाता है, वैसे ही वेद भी। जैसे प्रकृति तब भी बनी रहती है, वैसे ही उसका ज्ञान भी सदा रहता है। (हां ! दोनों विषयों में एक एक अन्तर है। 'वेद' ज्ञान होने के काण समवाय सम्बन्ध से ईश्वर में सदा रहता है, परन्तु प्रकृति=जगत् का कारण ईश्वर से पृथक् सत्ता रखती है। ईश्वर प्रकृति में व्यापक हो के रहता है। वेद और ईश्वर का 'गुणगुणी सम्बन्ध है। गुण गुणी से पृथक् नहीं रह सकता। यह दार्शनिक महान् अन्तर है)।

भारतीय दार्शनिकों की दृष्टि में 'पौरुषेयत्व' व 'अपौरुषेयत्व' के विषय में भी भिन्न भिन्न अभिप्राय हैं। हमने इस निबन्ध में 'पौरुषेय=ऋषि पैगम्बर महात्मा साधु आप्तजनोक्त तथा 'अपौरुषेय' ईश्वर प्रकाशित, ब्रह्माविष्कृत ईश्वर रचित या परमात्म-प्रदत्त या रिवील्ड बाई गौड या अल्लाह का इलहाम इन अर्थों में इन पदों का प्रयोग किया है।

इस प्रकार यह सर्वथा संशोधित परिवर्धित तृतीय संस्करण विद्वानों के सामने प्रस्तुत है। इसके संशोधन में जिन आप्त मित्र विद्वानों ने सहयोग दिया है, लेखक उनका हृदय से आभारी है। इसमें इन "देवों का उच्छिष्ट" ही संगृहीत है। लेखक का इस सब के चरणों में श्रद्धापूर्वक नमस्कार है।

वेदों का विषय सरल और मानव जीवनोपयोगी होते हुए भी आजकल के पठित व्यक्ति को वह रुखा लगता है। दुःख है कि आर्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जन भी वेदविषयक साहित्य पढ़ने में कम रुचि रखते हैं। परिणामतः वेदविषयक साहित्य का प्रकाशन भी कम होता है। ऐसी स्थिति में आर्य सिद्धान्तों के सूक्ष्मज्ञाता श्री पं० जगदेवसिंह सिद्धान्ती का अपनी सभा की ओर से इसको प्रकाशित करना कुछ साहस का ही काम है। मैं इनका हृदय से आभारी हूं। इनका स्नेह सदा मुझ पर रहता है। सौ बार-बार इनका अभिनन्दन है।

हैदराबाद-आंध्र प्रदेश। मदनमोहन विद्यासागर
अपने ५६ वें जन्मदिवस पर। २१.१.७०

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेदों की अन्तः साक्षी का महत्त्व

मानव जाति के सारस्वत इतिहास में वेद सबसे पुराना और यथार्थ व्यवहार का शास्त्र है। भारतीयों की दृष्टि में यह 'ईश्वरप्रदत्त' धर्म शास्त्र है। सृष्टि के आदि में जीवों के कल्याणार्थ मानवोपयोगी अन्य अर्थों (पदार्थों, वस्तुओं) के साथ साथ इस अर्थप्रकाशक ज्ञान-बीज का भी अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा इन चार ऋषियों के हृदय में (परमपुरुष यज्ञरूप) परमात्मा ने ऋग्, यजुः, साम और अथर्व" रूप चार संहिताओं में प्रकाश किया।

सृष्टि का आरम्भ हुए, भारतीय ज्योतिषियों में सनातन काल से प्रचलित परम्परा पर आश्रित काल-गणना के अनुसार १९६०८५३-०६९ वर्ष बीत गये हैं। अर्थात् सर्गारम्भ से ले कर विक्रमी सम्वत् के सौर वर्ष २०२६ की समाप्ति के दिन तक एक अरब, छानवें करोड़ आठ लाख, त्रेपन हजार उनहत्तर सौर दिन हुए हैं। यह सत्तरवां वर्ष विक्रमी २०२६ के बाद से चल रहा है। इसी लिये वेदों को उत्पन्न हुए भी उतने ही वर्ष हुए हैं, जितने कि मनुष्य को प्रादुर्भूत हुए। "वेदानामुत्पत्तौ कियन्ति वर्षाणि व्यतीतानि ? अत्रोच्यते-एको वृन्दः षण्णवतिः कोटयोऽष्टौ लक्षणि, द्विपंचाशत्सहस्राणि, नवशतानि, षट् सप्ततिश्चैतावन्ति वर्षाणि व्यतीतानि एतावन्त्येव वर्षाणि वर्त्तमानकल्पसृष्टेश्चेति ॥" (प्रश्न) वेदों की उत्पत्ति में कितने वर्ष हो गये हैं ? (उत्तर) एक वृन्द, छानवे करोड़, आठ लाख, बावन हजार, नव सौ, छहत्तर अर्थात् १९६०८५२९७६ (सम्वत् १९३३ वि० तक इसमें ९३ जोड़ने से १९६०८५३०६९ हो जाते हैं) वेद की और जगत् की उत्पत्ति में हो गये हैं। इस सृष्टि की तथा वेदों की उत्पत्ति में भी व्यतीत हुए हैं। यही व्यवस्था सृष्टि और वेदों की उत्पत्ति के वर्षों की ठीक है।" ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेदोत्पत्ति विषयः ॥" (प्रश्न) जगत् की उत्पत्ति में कितना समय व्यतीत हुआ ? (उत्तर) एक अर्ब, छानवें करोड़ कई लाख और कई सहस्र वर्ष जगत् की उत्पत्ति और वेदों के प्रकाश होने में हुए है। —सत्यार्थप्रकाश ८ म समुल्लास। (प्रश्न) किन के आत्मा में कब वेदों का प्रकाश किया ? (उत्तर) प्रथम सृष्टि के आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा इन ऋषियों के आत्मा में एक एक वेद का प्रकाश किया ।—सत्यार्थप्रकाश ७ म समुल्लास। "साकंजातानाम्···। ऋ० १.१६४.१५ "भावार्थः—येऽत्र जगति पदार्थाः सन्ति ते सर्वेब्रह्मनियोगतो युगपज्जायन्ते नात्र रचनायां क्रमाऽक्षाऽस्ति कुतः परमेश्वरस्य सर्वव्यापकत्वाऽनन्तसामर्थ्यवत्त्वाभ्याम्।

भाषान्वयार्थः—जो इस जगत में पदार्थ हैं, वे सब ब्रह्म के निश्चित किये हुए व्यवहार से एक साथ उपन्न होते हैं। यहां रचना के क्रम की आकांक्षा नहीं, क्योंकि परमेश्वर के सर्वव्यापक और अनन्त सार्मथ्य वाला होने से ॥" ऋषिदयानन्द-ऋग्वेदभाष्य ॥ ऋषि दयानन्द द्वारा प्रस्तुत तीनों प्रमाणों से स्पष्ट है कि सृष्टि, वेद और मानव की उत्पत्ति एक साथ ही भगवान् करता है। मानव और वेद की उत्पत्ति सृष्टि को उत्पत्ति के पश्चात् नहीं ॥

चारों वेदों के चार विषय हैं, विज्ञान, कर्म, उपासना और ज्ञान। 'सृष्टिकर्त्ता' से लेकर 'तृणपर्यन्त' पदार्थों के विशेषज्ञान को विज्ञान कहते हैं। कर्म दो प्रकार का है, प्रथम सर्वविध दुःखों से छूटने के लिये जो कम किये जाते हैं, दूसरे इह लोक में सब आजीविका सम्बन्धो व सामाजिक कर्त्तव्य रूप व्यवहारों की साधना के लिये। सृष्टि के सब नियमों को पहिचान कर उसके संचालक का आत्मसाक्षात् (आत्मप्रत्यक्ष) करना 'उपासना' है। सब मूलकारणों के तात्विकविश्लेषण का नाम ज्ञान है। इन चार विषयों का अत्यन्त सरल सुबोध रूप से वर्णन वेदों में किया गया है। (विशेष द्रष्टव्य लेखक रचित "आर्यसिद्धान्तप्रदीप" पृष्ठ ७१-७३।)

जब से वेदों का अध्ययन तथा अध्यापन प्रारम्भ हुआ है, तभी से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इनके विषय में नानाविध अभिप्राय पाये जाते हैं। मध्य (अर्वाचीन) काल में इनके पौरुषेयत्व तथा अपौरुषेयत्व के विषय में भी विवाद प्रारम्भ हो गया है। यद्यपि इस विषय में कोई मतभेद नहीं होना चाहिये; क्योंकि जो ग्रन्थ पौरुषेय हैं, उनका रचयिता पुरुष ज्ञात होना चाहिये। यदि रचयिता का पता नहीं, तो उसके निर्माण समय का पता होना चाहिये। परन्तु वेदों के रचयिता किसी व्यक्ति का नाम तथा अन्य मानवकृत ग्रन्थों के निर्माण के समय को ज्ञान की तरह इनके निर्माण समय का ज्ञान नहीं। तथा अत्यन्त प्राचीन साहित्य में इनके निर्माण विषय में सन्देह भी प्रकट नहीं किया गया। विश्व साहित्य में आदि युग से अब तक इस उपदेशप्रद संगीत का विना इसके किसी निर्माता के नाम से सुनते चले आ रहे हैं।

परन्तु केवल इतना कहने मात्र से कुछ विशेष तथा सन्तोषप्रद परिणाम नहीं निकलता। इसलिये हमें ऐसे प्रमाण ढूंढने चाहियें, जिनके आधार पर हम उसके निर्माण काल के विषय में कोई दृढ़ निश्चित मत बना सकें। उनमें से एक प्रमाण, 'वेदों से ही उसके कर्त्ता का पता लगाना' है।

किसी भी ग्रन्थ के विषय में किसी बात का निर्णय करते समय हमें उसी को मुख्य रूप से आधार बनाना चाहिये। इसलिये 'वेद से ही वेद के विषय में निर्णय' करने की शैली युक्तियुक्त होने से अधिक प्रामाणिक व बहुत उत्तम है। आस्ट्रेलिया के गेहूं से किसी व्यक्ति का भारतीय गेहूं के विषय में किसी विशेष प्रकार की सम्मति बना लेना, जितना अशुद्ध तथा हास्यास्पद है, उतना ही आपत्तिजनक तथा दोषपूर्ण यह है कि "वेद के विषय में वेद को छोड़कर किसी अन्य ग्रन्थ को आधार मानकर किसी भी प्रकार की सम्मति बनाना" कुछ अंशों में उनसे सहायता ली जा सकती है; परन्तु सब अंशों में नहीं। वास्तव में जैसे सूर्य के प्रकाश के लिये किसी दूसरे प्रकाश की आवश्यकता नहीं; इसी प्रकार वेद की महत्ता को सिद्ध करने के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लिए अथवा वेद के विषय में कोई भी गंभीर विवेचना करने के लिये अन्य आधार को छोड़ कर वेदों की ही सहायता लेनी चाहिये। इसलिये हम इसी आधार पर वेदों के विषय में वेदों की अन्तः साक्षी का विश्लेषण करेंगे।

अब तक वेद की अन्तःसाक्षी को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया गया। वेदों के विषय में अन्तरंग तथा बहिरंग दोनों प्रकार की परीक्षा हम वेद से ही कर सकते हैं। वेद की भूमिका वेद के आधार पर बनेगी और वेद का रहस्य वेद से ही खुलेगा। वेद ने स्वयं ही अपने निर्माता की तरफ स्पष्ट व निश्चित संकेत किया हो और उसका वेदों में कहीं विरोध न किया हो, बल्कि प्रबलता से पोषण किया गया हो, तो वही सबसे प्रबल प्रमाण इस विषय में मानना होगा।

हमें समझ में नहीं आता कि क्यों किसी अन्य ग्रन्थ या प्रमाणों को वेद की बहिरंग परीक्षा में एकमात्र मुख्य निर्णायक या आधार स्वीकार किया जावे? हमें वेदों से ही यह देखना चाहिये कि इस विषय में उनका मौन है या एक विशेष निश्चित एवं स्पष्ट मत? वेद को यदि सरसरी और उथली दृष्टि से पढ़ना प्रारम्भ करें तो उसके निर्माता के विषय में कोई मूर्त्त संकेत प्राप्त न होगा परन्तु जरा भी गंभीर विचार तथा अन्तर्दृष्टि से देखें तो पद-पद पर उसका नाम लिखा मिलेगा। आगे हम उन्हीं में से कुछ स्थलों को चुन कर विद्वानों की सेवा में प्रमाण रूप से प्रस्तुत करेंगे।

कई विद्वानों का यह कथन है कि वेदों की वर्णनशैली को देखकर यही ज्ञान होता है कि 'वेद किसी (पुरुष विशेष या-ऋषिसमूह) ने बनाये हैं।' प्राचीन काल के ऋषि (चाहे वे भारतीय हों या किसी अन्य देश के वासी) लोग अपने-अपने प्रवचनों का संग्रह या तो स्वयं कर गये हैं और या उनके पीछे आने वाले उनके भक्तशिष्यों ने कर दिया है। मानों सहस्रों जिज्ञासु नरनारीगण उस संगृहीत उपदेशामृत को सुनने वाले हों तथा कोई एक योग निष्णात मति-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तत्त्वज्ञानी ऋषि उन्हें सब सत्यविद्याओं का उपदेश दे रहा हो। क्योंकि वेदों में "अहं" "त्वं" तथा "सः" इन सर्वनामों का प्रयोग सीधा इन्हीं के लिये आया हुआ प्रतीत होता है। उदाहरण के लिये हम दो ऋचायें उद्धृत करते हैं।

पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥ अथर्व० १०.८.३२।

यहां अथर्व० आदि से भिन्न किसी अन्य काव्य की ओर संकेत सा है जिसे कहा भी गया है—देव=(परमेश्वर) का काव्य है; क्योंकि उसके लिये 'न ममार' ही कहकर मौन धारण न करते हुए 'न जीर्यति' ऐसा भी कहा गया है। अर्थात् यही नहीं कि उसका अध्ययन कभी लुप्त न होगा, अपितु उसके विचार भी पुराने नहीं होंगे। ऐसा कोई देवकाव्य ईश्वरीय ज्ञान है, जिसकी तरफ यह संकेत है। परन्तु इन शब्दों के वेद में ही पाये जाने के कारण यह तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह वेद ईश्वरीय ज्ञान नहीं। इसी प्रकार—

स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः।

अथर्व० में प्रभु की महिमा का वर्णन करते हुए कहा जा रहा है कि·····'उसको स्कम्भ नाम से पुकारो'·····। यहाँ प्रभु के विषय में कहा जा रहा है और कोई भक्त व्यक्ति किसी को समझाते हुए मानो कह रहा है। वेदों में अन्य कई स्थलों पर भी परमेश्वर की इसी प्रकार स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना अधिक मात्रा में है।

अन्य भी बहुत से मन्त्र वेदों में से चुन कर इस सिद्धान्त के पोषक प्रमाणों के तौर पर प्रस्तुत किये जा सकते हैं, जिन से यही प्रतीत होता है कि वेद का वक्ता कोई पुरुष (या ऋषि समूह) है, जो कि किसी दूसरे को शिक्षा दे रहा है। अर्थात् ये सब प्रार्थनायें ऋषियों ने बनाई हैं। परन्तु हम आगे सिद्ध करेंगे कि यह पक्ष ठीक नहीं, क्योंकि वेदों की अन्तःसाक्षी ही इस के विरुद्ध है।

सब से प्रथम हमें यह देखना चाहिये कि क्या वेदों में स्वयं उनके कर्त्ता का 'अहं' रूप से कहीं निर्देश है या नहीं? वेदों में 'अहं' से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तत्त्वोपदेष्टा (ऋषि या परम ऋषि) तथा भक्त दोनों का 'त्वं' से भी गुरु (परमेश्वर या ऋषि) तथा भक्त दोनों का और 'सः' इससे भी दोनों का निर्देश है। अभिप्राय यह है कि इन तीनों सर्वनामों से परमेश्वर और जीवात्मा दोनों का बोध होता है। वेदों में कहीं-कहीं प्रकृति के बोधक भी ये तीन सर्वनाम पाये जाते हैं।

इसी को निरुक्त शास्त्र के शब्दों में यों कह सकते हैं कि कुछ ऋचाएं 'प्रत्यक्षकृत' हैं; जो कि मध्यम पुरुषयोगी होती हैं और जिन में सम्मुखस्थित को 'त्वं' सर्वनाम से सम्बोधन कर के उपदेश दिया गया है। कुछ ऋचाएं 'परोक्षकृत' हैं जो प्रथम पुरुषयोगी होती हैं और जिनमें किसी अप्रत्यक्ष वस्तु या व्यक्ति की तरफ 'सः' इस सर्वनाम से निर्देश करते हुए उनका वर्णन है। कुछ 'अध्यात्म' ऋचाएं हैं, जो उत्तम पुरुषयोगी होती हैं और 'अहं' इस सर्वनाम से संयुक्त होती हैं। अर्थात् ('आत्म अधि') जिनका सीधा अपने से सम्बन्ध होता है; जो आत्मा में आश्रित हों अर्थात् 'आत्मा' का चाहे वह जीवात्मा हो या परमात्मा हो और चाहे वह प्रकृति का हो—'मैं' के तौर पर क्यों न निर्देश किया हो—उन में कोई 'अहं' इस रूप से बोल रहा है। अर्थात् अहं त्वं तथा सः इन तीनों का सम्बन्ध वेदों में परमात्मा जीवात्मा तथा प्रकृति तीनों से है—द्रष्टव्यः 'निरुक्त' सप्तम अध्याय दैवत काण्ड का प्रारम्भ)।

परन्तु यह भेद अति सूक्ष्म है। और इन तीनों का जीवात्मा से अधिक सम्बन्ध मालूम पड़ने के कारण कई विद्वान् ऐसा विचारते हैं कि वेदों में ऋषियों के उपदेशों का संग्रह ही है। परन्तु यह समस्या वेद की वर्णनशैली को सामने रख लेने से बहुत ही शीघ्र हल हो जाती है।

भारतीय साहित्य का अध्येता प्रत्येक विद्वान् उसके वर्णन की संवादरूप शैली से अवश्यमेव परिचित है। कोई सुन रहा है, कोई तत्त्वज्ञाता उन्हें सुना रहा है। कोई ज्ञान के विशद आकाश से ज्ञान-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बिन्दु बरसा रहा है और कुछ अज्ञान के ताप से सन्तप्त उस में स्नान कर आत्म-शान्ति का अनुभव कर रहे हैं। महाभारत, रामायण, गीता, उपनिषदें, स्मृतियां तथा बहुत सारा बौद्ध साहित्य व जैन-वाङ्मय इसी संवादरूप शैली में लिखा गया है। इस सीमा तक यह शैली हमारे यहां प्रचलित हुई है कि बहुत सारे आयुर्वेद के ग्रन्थ भी इसी शैली द्वारा प्रारम्भ किये गये हैं। आयुर्वेद में पारंगत ऋषि के पास बहुत से जिज्ञासु आते हैं और आयुर्वेद की शिक्षा ग्रहण करने की इच्छा प्रगट करते हैं। फिर वह उन्हें आयुर्वेद का उपदेश देता है।

भारतीय साहित्य में ही नहीं अपितु संसार के अन्य ग्रीक लैटिनादि साहित्यों में भी इस संवादशैली को देख सकते हैं।

इस शैली का स्वरूप क्या है? यही कि एक सुनाना प्रारम्भ करता है और बीच-बीच में स्वयं ही वह अन्यों के संवाद भी देने लग जाता है। उस संवाद में अहं का प्रयोग इस प्रकार दोनों के लिये हो जाता है। जहां तो वह स्वयं कह रहा होता है वहां 'अहं' अपने लिये प्रयुक्त करता है और जहां अन्यों द्वारा प्रश्नोत्तरी या संवाद कराता है, वहां 'अहं' का प्रयोग अपने कल्पित पात्रों के लिये करता है। परन्तु दोनों अवस्थाओं में 'अहं' का प्रयोग करता स्वयं ही है। जैसे महाभारत में कई स्थलों पर तो 'अहं' का प्रयोग वेदव्यास या किसी महाभारत के रचयिता के लिये होता है; परन्तु वहीं भीष्म-युधिष्ठिर-संवाद में कई स्थलों में (तथा शान्ति पर्व के बहुत से स्थानों पर) 'अहं' का प्रयोग उस ग्रन्थ के रचयिता के लिये न हो कर भीष्म और युधिष्ठिर का बोध कराने वाला होता है। इसी प्रकार रामायण में भी कई स्थानों पर 'अहं' से आदि कवि वाल्मीकि उसके रचयिता के तौर पर अभिप्रेत है तथा रामायण के आधार पर बने ही योग-वासिष्ठादि भागों में अनेक स्थलों पर प्रयुक्त कई अहं शब्द वसिष्ठ या राम केलिये आया है। इसका बहुत साफ उदाहरण जगत्प्रसिद्ध पंचतन्त्रनामक ग्रन्थ है। पुस्तक के क्रम तथा प्रवाह को कायम रखने के लिये विष्णशर्मा अपने लिये 'अहं' का प्रयोग करता है। परन्तु

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दमनक तथा करटक की कथा के वर्णन के समय वह 'अहं' का प्रयोग पंचतन्त्र का रचयिता विष्णुशर्मा स्वयं ही अपने कल्पित उन पात्रों के लिये करता है। मुख्य अंश इस शैली को समझने योग्य यह है कि एक ग्रन्थ का रचयिता स्वयं ही 'अहं' का प्रयोग अपने तथा अपने कल्पना के संसार के जीवों दोनों के लिये एक बार हो नहीं, बार-बार करता है। अभिप्राय यह है कि किसी ग्रन्थ का अहं शब्द दो का बोधक भी हो सकता है। ठीक इसी प्रकार वेद में भी अहं का प्रयोग दो का बोध कराने वाला है।

यह ईश्वर भी जीवों को सरल से सरल शैली में उपदेश देता है। सरल शैलियों में एक शैली यह भी हो सकती है। विशेष कर के अपरिपक्वमति जनों व सांसारिक प्राणियों को समझाने के लिये तत्त्वोपदेश की यह संवादशैली बहुत ही उत्तम व उपयुक्त है। इससे सब प्रकार की श्रेणियों के व्यक्तियों के हृदयों में गंभीर रहस्य अत्यन्त सरलता से अंकित कराया जा सकता है। ईश्वर हमारा गुरु या तत्त्वोपदेष्टा है।—

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्॥ पातञ्जल योग सूत्र १.२६

हम उस के पुत्र हैं शिष्य हैं। हम एक सिरवाले भी आश्चर्य जनक कृत्य करते हैं, परन्तु वह तो सहस्रों सिरवाला (सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्) है। उसका ज्ञान अगाध है। वह सर्वत्र है।

वेद चतुष्टय में ब्रह्माण्ड की संचालक चेतन शक्ति का स्थान-स्थान पर वर्णन है। जो भी मनुष्य या सम्प्रदाय इस प्रकार आस्तिक हैं—संसार के जन्म स्थिति लय करने वाली सर्वोच्च चेतन शक्ति ईश्वर में विश्वास रखते हैं-वेइस शक्ति को सर्वज्ञ भी मानते हैं। [शक्ति का अभिप्राय शक्ति वाले तत्त्व से है] उसकी सर्वज्ञता उसके अपने लिये ही न होकर जीवनिमित्त भी है। यदि यह ठीक है तो सर्गादि में अपने नित्य ज्ञान की अक्षय निधि में से मानव

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

को अन्य प्राकृतिक पदार्थों के साथ ज्ञान का देना भी आवश्यक है। नहीं तो उस ईश्वर के सर्वज्ञ तथा जीव के (इच्छा ज्ञान प्रयत्न युक्त) ज्ञान होने का प्रयोजन पूरा नहीं होता। भारतीय आस्तिकगण उस आदि ज्ञान को 'वेदचतुष्टय' रूप में संगृहीत मानते हैं। हमारा विश्वास है कि इस 'संवाद शैली' में ज्ञान देना उत्तम है। यह शैली किसी भी ग्रन्थ को ईश्वरीय कहने में बाधक नहीं। इस शैली में भी परमेश्वर द्वारा ज्ञान दिया जा सकता है। जिस प्रकार एक गुरु अपने शिष्यों को संवादरूप से समझाता है, हमारा विश्वास है कि ठीक इसी प्रकार या उससे मिलते जुलते ही किसी और रूप में परमेश्वर भी मनुष्यों को प्रकृति के हिरण्मय पात्र से ढके सत्य का ज्ञान देता है। (हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। यजु० ४०.१७।) हम कितने भी ज्ञानी क्यों न हों? उस सर्ववित् प्रभु के सामने नितान्त अज्ञानी ही हैं। वह सर्वज्ञ है, हम अल्पज्ञ हैं। उसके ज्ञान ग्रन्थ में अन्य शैलियां भी हो सकती हैं। वेद में स्थान स्थान पर इस संवाद रूप शैली द्वारा भी ज्ञान के रहस्य को आविष्कृत किया है, भौतिक तथा अध्यात्मिक दोनों प्रकार की विद्याओं की रहस्यमयी गुत्थियां सादे एवं सरलरूप से इसी शैली में सुलझाई गई हैं।

इस पर भी एक आक्षप हो सकता है। वह यह कि इस शैली में यही तो स्वीकार किया गया है कि 'अहं' शब्द का प्रयोग ग्रन्थ के रचयिता तथा उसके कल्पित पात्र दोनों के लिये होता है। परन्तु यह ही निश्चित नहीं कि उसका वह कल्पित पात्र मनुष्य ही हो। क्योंकि कल्पित पात्र परमेश्वर भी तो हो सकता है। जैसे गीता में उसके रचयिता के 'अहं त्वां सर्वपापेभ्यो' आदि वचनों द्वारा ईश्वर को अपना पात्र बनाया है। इस प्रकार तो गीता को भी ईश्वरीय मानना पड़ेगा, यद्यपि यह पौरुषेय (ऋषिप्रोक्त) ग्रन्थ है। यदि नहीं तो, क्यों हम इसकी तरह ही वेदों को भी पुरुषकृत समझ लेवें? यह शैली पुराणों में भी स्वीकृत है। पुराणों में 'अहं' रूप से कई स्थलों पर 'परमात्मा' स्वयं बोल रहा है। पुराण कर्त्ता है व्यक्ति और वर्णन इस प्रकार से किया गया है कि मानो भगवान् ही बोलते हों।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इसको ही हम दूसरे शब्दों में इस प्रकार रख सकते हैं कि वेद बनाये तो किसी ऋषि ने या बहुत सारों ने ही और ऐसे स्थलों की रचना की है कि जिनसे 'रचयिता' ईश्वर प्रतीत होता है।

इस युक्ति पर यदि गंभीर दृटि से विचारें तो यह एक दम थोथी तथा निस्सार प्रतीत होगी। प्रथम बात तो इस विषय में यह स्मरणीय है कि दोनों स्थलों पर 'अहं' का प्रयोग कुछ भिन्न भिन्न तरीकों से प्रयुक्त किया गया है। पुराणों का परमात्मा 'अहं' अपने को पुराण कर्त्ता नहीं कहता-वह तो स्पष्ट ही कल्पित पात्र है। यदि कहीं इस 'अहं' ने यह कहा भी है कि मैं ज्ञान देता हूं तो वहां भी वह वेद का ज्ञान देने वाला इस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है परन्तु इसके विपरीत वेदों का (परमात्मा) 'अहं' तो स्वयं अपने को ईश्वरीयज्ञान का आविर्भाव करने वाला प्रतिपादित करता है। वेदों का जीवात्मा बोधक 'अहं' कहीं भी अपने को वेद का रचयिता नहीं कहता। अभिप्राय यह हुआ कि वेदों में जो 'अहं' रचयिता के तौर पर प्रयुक्त हुआ है, वह स्वयं ज्ञान को देने वाला परमेश्वर है। इसके विपरीत पुराणों में रचयिता के तौर पर प्रयुक्त 'अहं' कोई पुरुष है। यदि वेदों में भी यही शैली होती हो वहां वह रचयिता के तौर पर प्रयुक्त 'अहं' शब्द कहीं भी तो किसी व्यक्ति का बोधक होता।

इस प्रकार यह स्पष्ट ह कि वेदों के रचयिता या आविर्भावकर्त्ता (वह चाहे ऋषि हो या परम ऋषि ओ३म् हो) ने अपने ज्ञान को इस प्रकार दिया है कि कहीं वह स्वयं रहस्यों का उद्घाटन कराता है और कहीं (स्वयं ही) किसी (पात्र को तत्त्वज्ञानी बना कर उस) से अन्यों को तत्त्वज्ञान दिलवाता है। उन्हीं स्थलों को पढ़ कर ऐसा प्रतीत होता है कि वे ऋषियों ने बनाये हैं।

हमने ऊपर यह प्रतिपादित किया कि वेद में 'अहं' से जीवात्मा तथा परमात्मा दोनों का बोध होता ह। यह भी निश्चित है कि इन दोनों के बोधक 'अहं' में से ही कोई 'अहं' वेदों का रचयिता है। अब यह देखना है कि इनमें से कौन सा 'अहं' वेदों का ज्ञान देने वाला है ?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वद में जोवात्मा बोधक 'अहं' शब्द कहीं भी अपने को निर्माता नहीं कहता। वह तो अपने प्रभु से प्रार्थना करता है, शक्तियां मांगता है।

ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्, विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो, भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम॥

यजु० ४०. १६

"हे ज्ञानस्वरूप ! हमें अपने ध्येय अर्थात् विज्ञान व ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये उत्तम मार्ग से ले चलो। तुम सब प्रज्ञानों-उत्तम कर्मों को जानने वाले हो, हमारे से कुटिल पाप कर्म को दूर मार भगाओ। हम तुम्हें बार बार नमस्कार करते हैं।"

ओ३म् विश्वानि देव सवित र्दुरितानि परासुव। यद् भद्र तन्न आसुव॥ यजु० ३०. ३

"हे जगदुत्पादक देव ! हमारे जीवनों में प्रविष्ट होने वाले दुर्गुणों दुर्व्यसनों को हमसे दूर कीजिये। जो भद्र हैं, उसे प्राप्त कराइये।"

और अपने मार्गों में आने आले शत्रुओं से रक्षा के लिये सहायता मांगता हुआ उन्नति के मार्ग को पूछता है। इसके विपरीत परमेश्वर का बोधक 'अहं' शब्द कई स्थलों पर स्वयं अपने को ज्ञान या वेद का कहने वाला कहता है। उदाहरणार्थ—

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्त्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥—अथर्व० १९. ७१.१.

"मैंने द्विजों (=मनुष्यमात्र, रजोवीर्य तथा जन्म व विद्या से जो जन्म प्राप्त करने वालों) को पवित्र करने वाली अर्थात् सुसंस्कृत करने वाली, शरीर मन आत्मा की शोधक और इष्टदात्री वेदमाता (=वेदज्ञान) का वर्णन कर दिया है। यह वेद माता सब जीवों को आयुः, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति द्रविण और ब्रह्मवर्चस् को ओर प्रेरित

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करे। हे जीवो ! तुम इसका उपभोग करके इन्हें मेरे लिये समर्पित करके ब्रह्मस्थिति को प्राप्त करो ।।

इस पर भी यह कहना कि वेदों की रचना ही किसी ने इस प्रकार से की है कि वहां पर रचयिता का बोधक 'अहं' शब्द को ईश्वर के लिये जान बूझ कर प्रयोग किया गया है, हमें इसलिये युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता, क्योंकि कहीं पर भी तो किसी ऋषि को वेद निर्माता या ज्ञानदाता के रूप में हम वेद में निर्दिष्ट नहीं कर पाते ।

[वैदिक वाङ्मय से लेकर ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्.....स्मृति इतिहास पुराण आदि ग्रन्थों में यह कहीं नहीं लिखा कि 'वेद' अमुक समय में अमुक ऋषि ने बनाये। या भिन्न भिन्न समयों में अमुक= ऋषि समुदाय ने वेदों को बनाया। फिर उन का संग्रह कर लिखा गया। ऋषियों को 'मन्त्र—द्रष्टारः' मन्त्रों को देखने वाले समझने वाले स्थान स्थान पर कहा गया है। (निरुक्त) ।। 'स्वर्णकार' जैसे सोने का उत्पादक या निर्माता न होकर उनका प्रयोग करने वाला होता है, ठीक वैसे ही 'मन्त्रकार' ऋषि होते हैं, जो कल्याण के लिये मन्त्रों का विनियोग करते हैं।] यदि सचमुच ही किसी ऋषि ने उन्हें बताया है, तो कहीं तो इस प्रकार का निर्देश होता।

दूसरी बात यह है कि पुराण गीता आदि के रचयिता का नाम हमें इतिहास द्वारा ज्ञात है। उनमें से किसी ग्रन्थ का समय यदि निश्चित रूप से ज्ञात नहीं तो भी उनके विषय में इतना तो अवश्य विदित है कि अमुक समय से पूर्व तथा अमुक समय के पश्चात् नहीं बने। यदि इतना भी ज्ञात नहीं तो यह तो पता है कि वे एक विशेष समय में रचे गये हैं। परन्तु वेदों के विषय में ऐसा स्पष्ट संकेत कहीं भी भारतीय वाङ्मय में नहीं। जो स्पष्ट संकेत मिलता है, वह यही कि सर्गादि में ज्ञान बीज वेद को इह लौकिक वा पारलौकिक सब कार्यों की सिद्धि के लिये परमेश्वर ने मानव=ऋषियों को दिया। इसलिये

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इन ग्रन्थों से वेदों की तुलना करके वेदों को भी मनुष्यकृत कहना हमें युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता।

इस पर भी कोई कह सकता है कि ऐसा भी कई ग्रन्थों के सबन्ध में देखने में आता है कि उनसे उनके निर्माता के विषय में कुछ भी पता नहीं चलता। तब उसके निर्माता को प्रचलित प्रथा (ट्रेडिशन) के अनुसार खोजने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु भारतीय वाङ्मय में प्रचलित जनश्रुति के अनुसार वेदों का कर्त्ता कोई मनुष्य ज्ञात नहीं है। उनके अमुक समय में भी कोई (ट्रेडिशन) प्रचलित नहीं है। उनके ऊपर कोई नाम भी नहीं जिसे कि निर्माता समझ सकें। परन्तु यदि इनके निर्माता तथा निर्माण काल के विषय में कोई भी ट्रेडिशन है, तो वह यही कि सृष्टि के आदि में ब्रह्मा अर्थात् परमेश्वर द्वारा चार ऋषियों के हृदय में उनका आविर्भाव किया गया।

हमारे देश में वेदपाठियों की यह परिपाटी कि वेद मन्त्रों से पहिले "ओ३म्" का उच्चारण करना भी कोई विशेष महत्वपूर्ण गम्भीर अर्थ रखती है। हमें तो उस का यही अर्थ ज्ञात होता है कि प्रत्येक मन्त्र के रचयिता का नाम प्रारम्भ में बोला जाता है। फिर उस मन्त्र के अर्थ समझने वालों को ऋषि के तौर पर तथा उस मन्त्र के वर्णनीय विषय को 'देवता' के (देखो निरुक्त यास्क मुनि कृत) तौर पर स्मरण किया जाता है। ऋषि और देवता का तो मन्त्रोच्चारण से पूर्व नाम भी नहीं लिया जाता।

वेद ने ऋषि का निर्वाचन भी स्वयं कर दिया है। उस में मन्त्रों को बनाने वाला' ऐसा लक्षण कहीं नहीं है।

तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहुः यज्ञन्यं सामगामुक्थशासम्।
ऋ० १०.१०७.६

"यज्ञकर्त्ता, सामगाता, तथा उक्थ्य=मन्त्रानुसार आदेश देने वाले को ऋषि तथा ब्रह्मा कहते हैं।" दूसरा अर्थ "जो शुक्र रूप चमकती प्रकृति के सत्व रज तम रूप तीनों शरीरों को (मन्त्रोत्तरार्ध)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जानता है, उस यज्ञ कर्त्ता, सामगाता, मन्त्रशास्ता को ऋषि या ब्रह्मा कहते हैं"·····तीसरा अर्थ··· "जो·····जानता है, जिसनें पहिले दक्षिणा से सफलता पाई (मन्त्रोत्तरार्धे) उसी को ऋषि या ब्रह्मा कहते हैं जो कि अध्वर्यु उद्गाता और होता तीनों के कामों को जानता है। तुलना करो ऐतरेय ब्राह्मण (५.३३) अथ केन ब्रह्मत्वं क्रियते त्रय्या विद्यया इति ब्रूयात्····· ब्रह्मा का कार्य यज्ञ में तीनों से निष्पन्न किया जाता है।

चौथा अर्थ ····· जो सबसे प्रथम दक्षिणा अर्थात् चातुर्य्य से सब सिद्ध करता है, वही शुक्र रूपी (हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे) चमकती प्रकृति के सत्व रज तम रूप तीनों शरीर को जानता है, उसको ही ऋषिः (अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ऋ० १.१६४. २०) अन्तः द्रष्टा तत्त्वार्थदर्शी अथवा 'ब्रह्मा' (ब्रह्मायं वाचः परं व्योम। अथर्व० ९.१० १४) 'वाणो का रक्षास्थान अर्थात् वेदाविर्भिव कर्त्ता कहा गया है। वह जीवन यज्ञ में प्रेरित करने वाला उत्तम वेद वचनों का शासक =उपदेष्टा है।" इस से स्पष्ट हो गया कि 'ऋषि' परमेश्वर वाची है, जिसने वेदों का ज्ञान दिया। ऐसी दशा में मानव ऋषियों द्वारा वेद निर्माण का प्रश्न ही नहीं रहता।

'देवता' मन्त्रों के बनाने वाले हैं, ऐसी जन श्रुति है ही नहीं। वर्त्तमान वैदिक विद्वान् भी 'वेदनिर्माण' का 'देवताओं के साथ कोई सम्बन्ध नहीं जोड़ते। भारतीय सारस्वत में 'वेदचतुष्टय' से सम्बद्ध 'देवता' शब्द का अर्थ 'मन्त्रों में प्रतिपादित विषय या 'सब्जेक मैटर' है। (देखों यास्क मुनि कृत निरुक्त शास्त्र)।

पौराणिक साहित्य में 'देवता' गक विचित्र चेतन शक्ति बन गई है। परिणामतः 'बहुदेवतावाद' का अदार्शनिक मत प्रचलित हो गया। इनकी स्त्रियां हैं, सेवक हैं, गण हैं, वाहन हैं, इनके परस्पर युद्ध भी होते हैं। हारने जीतते भी दिखाई देते हैं ····· यही नहीं, फिर इनके भूलोक में अवतरण भी माने जाते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेद की दृष्टि में उपास्य देव या इष्ट देवता एक ही है।

पतिर्बभूथा समो जनानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥
ऋ० ३.३६.४ ॥

"तू जनों का अनुपम पति है, सद भुवनों का एक ही स्वामी है।"

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः ॥
अथर्व० २. २. १ ॥

"जो दिव्य और वाणी का धारण करने वाला भुवनों का एक स्वामी है वही प्रजाओं में प्रजाओं द्वारा नमस्कार योग्य और स्तुत्य है।"

स एष एक एकवृदेक एव ॥ अथर्व १३.४.१२ ॥
"वह एक ही है, अकेला वर्त्तमान एक ही है।"

त्वमग्न इन्द्रः···त्वं विष्णु···त्वं ब्रह्मा···(ऋ० २.१.३)॥
त्वं रुद्रः (ऋ० २.१.६)
"हे तेजस्वी ईश्वर ! तू विष्णु···ब्रह्मा···रुद्र नाम वाला है।"

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥
ऋ० १.१६४.४६ ॥

"एक ही सत्पदार्थ को इन्द्र मित्र वरुण अग्नि दिव्य सुपर्ण यम मातरिश्वा आदि नामों से कहते हैं।"

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः यजु० ३२.१ ॥

"वही पूर्ण पुरुष अग्नि, आदित्य वायु चन्द्रमा शुक्र है। वही ब्रह्म है। वही आपः=व्यापक और वही प्रजापति है।"

यो नः पिता जनिता यो विधाता, धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥
—ऋ० १०.८२.३ ॥ अथर्व० २.१.३ ॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"जो हमारा पालक, उत्पादक और बन्धु है जो सम्पूर्ण भुवनों तथा धामों=नामरूपस्थानों को जानता है। जो एकाकी हो सब देवताओं का नाम धारण करने वाला है···उसी जिज्ञासितव्य की ओर सब भुवन जाते हैं।

उस एक देवता का कार्य तथा स्वरूप दिखाना यहां प्रयोजन नहीं। इतना कह देना पर्याप्त है कि "वह अजर (ऋ० ६.४६.१०), सृष्टि कर्त्ता (ऋ० १०.१२५.८), अजन्मा (ऋ० १.६७,३), निर्विकार= अदिति (ऋ० ८.४७.६), अकाम अमृत (अथर्व० १०.८.४४) है।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्य समाभ्यः।
यजु० ४०.८॥

"वह सर्वसमर्थ, अकाय, अव्रण, स्नायुरहित, शुद्ध=अविद्यादि दोषों से रहित और अपाप विद्ध (यथास्यात्तथा) होता हुआ सर्वव्यापक है। कवि, मनीषी, परिभू=अकारण कारण, नित्य प्रजाओं के लिये ठीक ठीक रीति से सब अर्थों (पदार्थों व ज्ञानों) का विधान करता है।"

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि देवता का मुख्य अर्थ वेदों में क्या है? यह तो स्पष्ट है कि इनमें 'देवता' पौराणिक रंग-रूप से सर्वथा रहित है। वैदिक सारस्वत में मुख्यतया देवता का अर्थ 'वर्णनीय विषय' है।

इस प्रकार 'वेद की अन्तः साक्षी' ने ऋषि और देवता के विषय में यही निर्णय दिया कि इनका निर्माण से कोई सम्बन्ध नहीं। यही कारण है कि मन्त्रों के पूर्व इनकेनामोच्चारण का विधान नहीं। 'ऋषि' मन्त्रार्थज्ञाता तथा 'देवता' वर्णनीय विषय के रूप में सूक्तों के ऊपर लिखे जाते हैं और 'ओ३म्' मन्त्र के आदि में उनके निर्माता के रूप में लिखा बोला जाता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रत्येक ग्रंथ के आरम्भ में जैसे हम उसके कर्त्ता के विषय में कुछ विचार करते हैं, ठीक उसी प्रकार से प्रत्येक मन्त्र जो कि अपने आप एक पुस्तक भी है तथा जिसे उस महान् ग्रन्थ का एक भाग भी समझ सकते हैं—के पूर्व भी 'ओ३म्' का उच्चारण करके उसके आविर्भाव-कर्त्ता का स्मरण करते हैं। इस प्रकार भी यह स्पष्ट है कि यदि ट्रेडिशन के अनुसार चलें तो उसके कर्त्ता का नाम 'ओ३म्' ही ज्ञात होता है। (कई स्थानों पर अर्थात् वेदेतर ग्रन्थों में 'मन्त्रकृत्' 'मन्त्र-कर्त्ता' शब्द आते हैं। प्राचीन ग्रन्थों में 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः' ऐसा अभिप्राय है। इस विषय में निम्न ग्रन्थों को देखना चाहिये—(१) "वैदिक इतिहासार्थ निर्णय" पं० शिवशंङ्कर शर्मा काव्यतीर्थ कृत। (२) 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास १म भाग श्री पं० भगवद्दत्त जी बी. ए. कृत। (३) "यास्क युग" पं० चमूपति एम. ए. कृत। (४) "वैदिक सम्पत्ति" पं० रघुनन्दन शर्मा कृत। (५) श्री पं० जयदेव शर्मा चतुर्वेदभाष्यकर कृत वेदभाष्य की भूमिका। (६) क्या वेद में इतिहास है ? स्वामी ब्रह्ममुनि कृत।

पूर्व में 'ओ३म्' उच्चारण करने का विधान न्यायतः 'संहिता मन्त्रों' के साथ ही है। पुरानी शास्त्र परम्परा के अनुसार संस्कृत में निर्मित 'गद्यपद्य' के साथ 'ओ३म् के उच्चारण लेखन का आचार या शास्त्र विधान नहीं है। क्यों ? इसीलिये कि उनके निर्माता का ज्ञान है।

यदि सब शुभ कार्यों से पूर्व विविध रूप में 'ओ३म्' के उच्चारण के लिखे बोले जाने का आधार होता तो सर्वत्र ऐसा दीखता। ऐसा आधार नहीं पाया जाता। इसलिये इस प्रकार यज्ञों से पूर्व 'ओ३म्' के उच्चारण करने का एक मात्र प्रयोजन यही प्रतीत होता है कि यह ओ३म् पद वाच्य परमेश्वर उनका निर्माता है।

अब हमें 'अहं' के रूप में प्रयुक्त रचयिता के विषय में अन्वेषण करना चाहिये। यजुर्वेद के ४० वें अध्याय का अन्तिम मन्त्र है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इसका देवता अर्थात् विषय महापुरुष आदित्य है। इससे ऊपर के मन्त्र में लिखा है। ओ३म् क्रतो स्मर। "हे (क्रतो!) जीवात्मन्! तू (ओ३म्) ओ३म् को (स्मर) स्मरण कर।" इस मन्त्र का देवता ईश है अर्थात् इसमें ईश्वरोपासना का उपदेश दिया गया है।

इस पर कोई कह सकता है, कोई ऋषि किसी को उपदेश दे रहा है कि "तू ओ३म् को याद कर।" परन्तु १७वें मन्त्र से संगति लगाने पर पता चलता है कि कहने वाला भी ओ३म् ही है। यहां लिखा है कि 'योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्' अर्थात् "मैं वह हूं जो कि (आदित्ये पुरुषः) आदित्य-मण्डल में पुरुष है।" जो शक्ति सूर्यमण्डल को चला रही है; उसे मेरी ही जानो, या मैं वह ही हूं, ऐसा समझो। मैं कैसा हूं? ओ३म् खं ब्रह्म।

ओ३म् नाम वाला मैं आकाश की तरह बड़ा व्यापक हूं। अथवा मैं आकाशवत् और ज्ञानस्वरूप हूं। यहां पर पुरुष शब्द परमेश्वर का बोधक ही है। जैसाकि पुरुष सूक्त के 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्ष सहस्रपात्' आदि मन्त्रों से ज्ञात होता है। पुरुष एवं इदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्।' आदि सभी इसी की पुष्टि करते हैं।

इस विवेचना से यह स्पष्ट है कि यहां 'अहं' से उसी का निर्देश है जो इसका प्रवचन कर रहा है। वह कैसा है? ब्रह्मस्वरूप है। ब्रह्म का अर्थ ज्ञान तथा वेद दोनों ही होता है। यहां पर स्वयं अहं ने अपने ज्ञानस्वरूप की तरफ इशारा किया है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में वागाम्भरणी सूक्त है; उसके विश्लेषण से हम इस 'अहं' के अभिप्रायः को और भी अच्छी प्रकार से जान सकेंगे। वहां से यह और भी स्पष्ट ज्ञात हो जावेगा कि, 'अहं' से रचयिता का बोध ही होता है। उसमें "अहमेव स्वयमिदं ब्रवीमि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः' "मैं साधारण मनुष्यों तथा देवतुल्य मनुष्यों के प्रति इस प्रीतिपूर्वक सेवनीय स्वीकार करने योग्य अनुकरणीय ज्ञान को कहता हूं" ऐसा आता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यहाँ पर प्रयुक्त अहं शब्द स्पष्ट ही रचयिता का बोधक है। इस मन्त्र की व्याख्या 'अहं' को ऋषि का बोधक समझ कर नहीं की जा सकती है; क्योंकि इसमें 'अहं' अपना परिचय देते हुए कहता है कि:—

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा।

"मैं रुद्र, वसु, आदित्यों तथा विश्वदेवों के साथ विचरण कर रहा हूं। मैं ही मित्र, वरुण, इन्द्राग्नि तथा अश्विनौ का भरण पोषण करता हूं।"

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ॥२॥

"मैं ही आहनस सोम तथा त्वष्टा और पूषा को धारण करता हूं।"

मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणति य ईं-शृणोत्युक्तम्।
.....श्रुधिश्रुतः श्रद्धिवं वदामि ॥४॥

"जो देख रहा है, सांस ले रहा है, कहे हुए को सुन रहा है, वह मेरे दिये हुये अन्न को खा रहा है।...सुन मैं तुझे सत्य बतलाता हूं।"

अहं रुद्राय धनुरातनोमि।..... अहं द्यावापृथिवी आविवेश ॥६॥

".....मैं ही रुद्ररूप धारण करने वाले के निमित्त धनुष तानता हूं।..... मैं ही द्यावापृथिवी में प्रविष्ट हुआ हूं।"

परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिमा सम्बभूव ॥८॥

"मैं ही द्यु तथा पृथिवी के परे अपनी महिमा से गया हूं।"

(अथर्ववेद के ४थे काण्ड का ३०वां सूक्त भी ऐसा ही है।)

अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सम्बभूव ॥
ऋ० १०.१२५.८॥

इसमें भी स्पष्ट ही अहं सृष्टिकर्त्ता है।....."सब भवनों को

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बनाता हुआ मैं ही वायु की भांति इन सबको गति देता हूं। मैं द्यु और पृथिवी से परे हूं। यह दृश्यमान सृष्टि मेरी महती शक्ति से उत्पन्न हुई है।" तथा

अहं परस्तादहमवस्ताद्यदन्तरिक्षं तदु मे पिता भूत्।
अहं सूर्यमुभयतो ददर्शाहं देवानां परमं गुहा यत्॥ यजु० ८.९॥

इस मन्त्र से भी स्पष्ट है कि 'अहं' सर्वव्यापक परमेश्वर है।..... "मैं परे से परे और समीप से समीप हूं। अन्तरिक्ष जो वह भी प्रगट करने वाला है। मैं ही सूर्य के दोनों ओर आर-पार देखता हूं। देवों अर्थात् दिव्यशासियों अथवा विद्वानों के अन्तरात्मा में जो है वह भी मैं ही हूं।"

क्या कोई ऋषि ऐसा हो सकता है? यहां तो स्पष्ट ही अहं से परमेश्वर का निर्देश है यह वर्णन तो किसी सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापक का हो हो सकता है; परिछिन्न और अल्पज्ञ व्यक्ति का नहीं। इसी प्रकार का ऋग्वेद में हो एक और इन्द्रदेवता का सूक्त है जिस में स्पष्ट लिखा है—अहं ब्रह्म कृणवम्॥ ऋ० १०.४९.१।

कि मैंने ब्रह्म=वेदज्ञान को (कृणवम्) बनाया है अर्थात् दिया है।"

इसमें भो अहं ने जो स्वयं अपना परिचय दिया है, वह ऋषि में नहीं घट सकता। यहां भी परमेश्वर प्रवचन कर रहा है। ऐसा ही प्रतोत होता है।

अहं विवेच पृथिवोमुतद्यामहमृतूरंजनयं सप्त साकम्।
अहं सत्यमनृतं यद् वदामि, दैवों परिवाचं विशश्च॥
अथर्व० ६.६१.२॥

"मैंने ही द्यु तथा पृथिवो में भेद किया है। मैंने ऋतुएं बनाई हैं...। मैंने ही सत्य तथा झूठ में भेद करके प्रजाओं के लिये दैवीय-वाणी (=देवकाव्यम् को कहा है।" दैवीं वाचम्=देवस्य काव्यम्=वाचं कल्याणीम्=सूनृता देवीम्। इसमें प्रयुक्त अहं से उसके प्रव-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चन कर्त्ता का ही बोध होता है। जिसने वेदवाणी को हम प्रजाओं के लिये दिया है।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय॥ यजु० २६.२॥

"मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के लिये इस कल्याणकारी वाणी को कहता हूं।"

अथर्ववेद के एक और प्रमाण से यही मत पुष्ट होता है।

यथा भर्गस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु॥ अथर्व० ९.६९.२॥

..."मैं इस...वाणी को मनुष्यों के लिये कहता हूं।" इन उद्धरणों से स्पष्ट हो रहा है कि 'अहं' रूप से यहाँ रचयिता ने अपना परिचय दिया है। यह परमेश्वर का बोधक है जो ज्ञानदाता है।

जब इतना निरूपत हो गया कि इनका प्रवचन उसी ने किया है तो वेदों में इसी को पुष्ट करने वाले जो अन्य प्रमाण आये हैं, जिन्हें आगे उद्धृत करेंगे उनकी संगति लग जाती है। हम इसकी पुष्टि के लिये कुछ और प्रमाण देते हैं।

वेद में उसे सृष्टि के प्रगट होते ही सब शक्तियों को सुशोभित करने वाला कहते हुए प्रथम मनस्वी—आदि ज्ञानदाता कहा है। (ऋ० २.१२.१)।

पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति। अथर्व० १०.८.३२)

"परमेश्वर के काव्य को समझो, जिसका न तो कभी अध्ययन ही बन्द होता है और न कभी उसके विचार पुराने होते हैं।" (=नित्यनूतन) रहते हैं। उसके कहे वचन त्रिकाल सत्य हैं। उसका दिया ज्ञान भी सत्यविद्याओं का भण्डार है।

वेदो ऽखिलो धर्ममूलम्॥ मनुस्मृति २.६॥
यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः॥ मनु० २.७॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥ मनु० २.१३ ॥

देवपितृमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम् ॥ मनु० १२.९४ ॥

"सर्वविध ज्ञान विज्ञान का आगार, समस्त धर्मों (कर्तव्याचरणों) का मूल, परम प्रमाण और ज्ञानियों, कार्यकर्त्ताओं तथा सामान्य प्रजा जन का पथ प्रदर्शक है।

वेद में यह भी स्पष्ट लिखा है कि यह काव्य जीवों के लिये है।

अस्ता इत्काव्यं वच उक्थमिन्द्राय शंस्यम्।
तस्मा उ ब्रह्मवाहसे गिरो वर्धयन्त्यत्रयो गिरः शुम्भन्त्यत्रयः
॥ ऋ० ५. ३९.५ ॥

"उस इन्द्रियाधिष्ठाता जीव के लिये ही यह प्रशस्त प्रशंसनीय वचन काव्य है। उस वेदधारक के लिये ही मिथ्यात्व—पारुष्य—असम्बद्धतारूपत्रिदोष रहित वाणियां बढ़ती हैं, शुभाचरण कराती हैं सुसंस्कृत बनाती हैं।" अत्रयः=वेद तीन नहीं हैं अथवा वाणियां बहुत नहीं हैं। त्रय इति बहुवाचकः।

अग्ने ! कविः काव्येनासि विश्ववित् ॥ ऋ० १०.११.३ ॥

"हे अग्ने ! तू सब कुछ जानने वाला अपने काव्य द्वारा कवि है।"

अयं कविरकविषु प्रचेता मर्त्तेष्वग्निरमृतो निधायि ॥
ऋ० ७.४.४ ॥

वह कवि कैसा है ? इसका उत्तर वेद स्वयं देता है। एक और मन्त्र उद्धृत करते हैं।

"यह कवि अकवियों में ज्ञान दाता है, मरण धर्मा चेतन जीवों में अमृत चेतन है।"

कविरसि प्रचेताः ॥ अथर्व० ५.१२.१ ॥

"वह प्रकृष्ट ज्ञानवान् कवि है।" इतना ही नहीं, फिर वेद में ही उसे कहते हैं—

न त्वदन्यः कवितरः ॥ अथर्व० ५.११.४ ॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"तुझ सा और कोई कवि नहीं है।" वह कवि करता क्या है ?

कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ यजु० ४०.८ ॥

"उसने अपनी प्रवाह रूप से निरन्तर रहने वाली प्रजाओं के लिये यथार्थ अर्थज्ञान अर्थ को बनाया है।" अर्थ शब्द के साथ कवि तथा मनीषी शब्द का प्रयोग तभी संगत होता है, जब उसका अर्थ ज्ञान भी हो। अन्यथा भौतिक पदार्थ —निर्माण में उसे कवि तथा मनीषी इन दो विशेषणों वाला कहना निर्थक होगा।

इस कवि का संसार संचालन से भी सम्बन्ध है। इसका अभिप्राय यही है कि सर्ग निर्माण के समय मनुष्य को ज्ञान भी दिया जाता है।

नराशंसः सुषूदतीमं यज्ञमदाभ्यः। कविर्हि मधुहस्त्यः ॥

ऋ० ५.५ २

"मनुष्यों से प्रशंसनीय, किसी से न दबने वाला सर्वशक्तिमान् मधुहस्त्य 'कवि'=प्रभु ही, इस संसारचक्र=जीवनयज्ञ को अच्छी प्रकार संचालित कर सकता है।"

पुराणों को पढ़ने वाले प्रत्येक विद्यार्थी को पुराणों का यह सिद्धान्त ज्ञात है कि 'सृष्टि के आदि में ब्रह्मा ने वेद बनाए।' यह मत वेद का स्वयं था और वहीं से पुराणो में गया है। इस ब्रह्मा को वेद का ज्ञाता तथा मनुष्यों या ऋषियों के हृदयों में वेद ज्ञान को स्थापित करने वाला अथर्व० में कहा है—

अग्निर्मेधाँ दधातु मे ॥१॥ वायुः प्राणान् दधातु मे ॥२॥ चक्षुः सूर्यो दधातु मे ॥४॥ मनश्चन्द्रो दधातु मे ॥५॥ आदि ९ वचनों द्वारा ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे ॥ अथर्व० १९.४३.२ ॥

"ब्रह्मा मेरे हृदय में ब्रह्म=ज्ञान को धारण करावे।" कहा गया है। इस सूक्त में भिन्न-भिन्न शक्तियों से प्रार्थना की जा रही है कि वे अपने-अपने सामर्थ्य से हमें समर्थ बनावें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यत्र ब्रह्मा पवमान छन्दस्यां वाचं वदन् ॥ ऋ० ९.११३.३ ॥

"हे सब को पवित्र करने वाले सोम ! (यत्र) जिस समय में (ब्रह्मा) ब्रह्मा वेद को धारण कराने वाला (छन्दस्याम्) छन्दोमयी इस वेद रूप (वाचं वदन्) वाणी का उच्चारण करता है ।" इस मंत्र का ऋषि कश्यप है । 'कश्यपः कस्मात् पश्यको भवति । वर्णविपर्ययात्' प्राचीन काल में प्रायः सब ऋषियों के नाम भी गुण कर्मानुसार ही होते थे । उनके जीवन में वह नाम घटता भी था । तो कश्यप कौन हुआ ? जो देखता है निर्माण नहीं करता । मन्त्र तो है ही वही जिसका मनन किया जावे । मनन उसी का किया जा सकता है जो कि पहिले से ही उपस्थित हो । 'छन्दस्याम् । छन्दोभिः वृतां छन्दसि भवां वा । छन्दः पद्ये च वेदे च' से भी स्पष्ट है कि छन्द का अर्थ वेद ही है । इस प्रकार इस मन्त्र से यह स्पष्ट है कि ब्रह्मा ने सब से पूर्व वेदवाणी का प्रवचन किया ।

तपश्चचार प्रथमं अमराणां पितामहः ।
आविर्भूता स्ततो वेदाः सांगोपांगपदक्रमाः ॥
अनन्तरञ्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तत्र विनिःसृता ॥मात्स्ये अ० उ० ३.४॥

इसी प्रकार श्वेताश्वतरोपनिषद् ६.१८ में लिखा है—"यो ब्रह्माणां विदधाति पूर्वं, यो वै वेदाश्चं प्रहिणोति तस्मै ।" जो सर्ववित् ईश्वर सर्ग के आदि में ब्रह्मा को उत्पन्न कर के उस के लिये वेदों को प्रदान करता है·····।

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृंहते ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥
॥ साम० ६.७.२.१ ॥

"मेधावी, महान्, ब्रह्मकृत्=वेदकर्त्ता=ज्ञानदाता, विपश्चित्, स्तोतव्य या व्यवहारोपदेष्टा भगवान् के लिये स्तुति गाओ ।" इस में परमेश्वर को ब्रह्मकृत् कहा है । सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य को कार्य चलाने के लिये जो ज्ञान दिया वह सब विद्याओं का आदिमूल है ।

देवत्तं ब्रह्म गायत ॥ (ऋ० १.३६.४)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"परमात्मा के दिये ब्रह्म=वेद का गान करो।" स्पष्ट ही ब्रह्म=वेद के साथ 'देवत्तं' देव का दिया हुआ विशेषण विद्यमान है।

यो अदधात् ज्योतिषि ज्योतिरन्तर्यो असृजन्मधुना सं मधूनि।
अध प्रियं शूषमिन्द्राय मन्म ब्रह्मकृतो बृहदुक्थादवाचि॥
॥ ऋ० १०.५४.६॥

"जो ज्योति में ज्योति डालता है, मधु से मधुरों को अच्छी प्रकार मिलाता है। उसके बाद इन्द्रियाधिष्ठाता जीव के लिये प्रिय बलकारक बहुत-बहुत बड़े मननात्मक ज्ञान को परमेश्वर रचित वेद से कहा।"...सर्गादि में.....प्रकाश और..... रस.....डाल के सृष्टि के सारे पदार्थ रच दिये, उसके बाद.....ज्ञान को 'ब्रह्मकृतवेद' (दैवत्तं ब्रह्म) से कथन किया। सृष्टि उत्पन्न करके उससे प्रयोग लेने के लिये भगवान् ने ज्ञान दिया। यहां उक्थ=वेद को 'ब्रह्मकृत' कहा गया है। इस में यह सन्देह हो सकता है कि परमेश्वर द्वारा 'परमेश्वरकृत् ज्ञान देने का अभिप्राय क्या है? 'वेदज्ञान' नित्य है। प्रत्येक सृष्टि में वही ज्ञान दिया जाता है अर्थात् गत सृष्टि में जो ज्ञान दिया गया था अब 'पुनरावृत्त' कराया गया है।

पृच्छामि वाचः परमं व्योम॥ यजु० २३.६१॥
"मैं तुझ से वाणी के परम आश्रय को पूछता हूं॥"
ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम्॥ यजु० २३.६२॥
"ब्रह्मा उस वाणी का आश्रय स्थान है।"

इस प्रश्नोत्तर रूप में कई समस्याओं का हल किया गया है। ६१ वें मन्त्र में प्रश्न है और अगले ही ६२ वें में समाधान दिया गया है। अथर्ववेद के ९.१० सूक्त के १३ वें और १४ वें मन्त्र में भी यही है। निम्न मन्त्र में और भी पुष्टि होती है।

अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम्।
वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति तदाहुर्ब्राह्मणं महत्॥ अथर्व० १०.८.३३॥
"अभूतपूर्व परमेश्वर द्वारा सर्गादि में प्रेरित वेदवाणियां सत्य-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तत्त्व का वर्णन करती हैं। वर्णन करती हुई जहां पहुंचती हैं उस महान् तत्व को ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म कहते हैं।"

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ॥ ऋ० १ ४०.३ ॥

"ज्ञान का स्वामी तथा उस को सूनृता-वाक् हमें प्राप्त हो।" यही मन्त्र साम० पूर्वा० १ प्रपा० ६ सूक्त में भी आया है।"

क्योंकि यदि प्रारम्भ में कोई मनुष्य को ज्ञान+भाषा न दे तो मनुष्य आगे उन्नति नहीं कर सकता।

न विजानामि यदि वेदमस्मि, निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥
ऋ० १.१६४.३७ ॥

"जो कुछ जैसा मैं हूं, उसे विशेष रूप से नहीं जानता। (निण्यः) न्याना, मूढ सा मैं मन से बन्धा हुआ विचर रहा हूं। जब मुझको कोई इस 'सत्यज्ञान' का प्रथमोत्पादक प्राप्त होता है, तभी इस वाणी के अधिकार को प्राप्त होता हूं।" इससे स्पष्ट है कि मनुष्य को सर्गादि में ज्ञानदाता की आवश्यकता है।

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् ॥ ऋ० १. ४०.५॥

"निश्चय से ब्रह्मणस्पतिः ज्ञान के स्वामी परमात्मा ने ही उक्थ्य-स्तुत्य मन्त्र का प्रवचन किया है।"

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य सूक्तस्य यन्तासि ॥ ऋ० २.२३ १९ ऋ० २. २४. १६॥ यजु० ३४.५८॥

"तू इस सूक्त (उत्तम वाणी संग्रह, वेद) का निबन्धक है।" (यम निबन्धने)।

ब्रह्म का अर्थ अथर्व वेद भी होता है जो चौथा वेद है। यहां उसे अपने हृदय में धारण कराने की ब्रह्मा से प्रार्थना की गई है। वास्तव में मनुष्य का परम लक्ष्य ईश्वर ही है। उसी ऊंचे अध्यात्म का उपदेश इसमें दिया गया है। इसी कारण अथर्व वेद ९. १०. २७

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में 'तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति' ऐसा कहा गया है। वह ब्रह्मणस्पति कैसा है—

कविं कवीनाम्·····। ऋ० २.२३.१॥

"कवियों में श्रेष्ठ कवि···।" तथा इसी सूक्त में आगे 'ज्यष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पते' ॥ ऋ० २. २३. १ ॥ उसे 'ब्रह्मों=वेद मन्त्रों के सबसे महान् प्रकाशक ब्रह्मणस्पति' कहकर सम्बोधन किया है। वह कौन है इसका निर्णय भी ऐसा किया गया है—

यस्मिन्निन्द्रो मित्रो वरुणो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥

ऋ० १.४०.५॥

"जिसमें 'वरुण, अर्यमा आदि सब देवताओं ने घर बनाया है।" अर्थात् इन प्राकृतिक शक्तियों का आश्रय है। ऐसा कहकर आगे कहा है—

तस्मिद्वोचेमा विदथेषु शम्भुवं मन्त्रं देवा अनेहसम्।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद्वामा वो अश्नवत् ॥

ऋ० १.४०.६॥

'सभाओं में तो उस कल्याणकारी अनेहस मन्त्र को हम देव बोले तथा उसी का नर अपने अन्दर धारण करें॥" एक स्थल पर वेद में आया है कि—

अव्यथश्च व्यचसश्च विलं विष्यामि मायया।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथो कर्माणि कृण्महे ॥ अथर्व० १९.६८.९॥

"अव्यापक=परिछिन्न (जीवात्मा) और व्यापक (परमात्मा) के भेद को=रहस्य को=ठिकाने की बुद्धि से खेलता हूँ। (ताभ्यां) इन दोनों के लिये अर्थात् इनका ज्ञान प्राप्त कराने के लिये वेद को ग्रहण करके सब मनुष्य अपने काम करें" अथवा····· (ताभ्यम्)—

अग्निः पूर्वेभि ऋषिभिरड्यो नूतनैरुत ॥ ऋ० १.१.२॥

"पूर्व और नूतन ऋषियों के लिये मैंने वेदों का सर्गादि में उद्धार किया।"—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

योग सूत्र भाष्यकारों ने 'स पूर्वेषामपि गुरुः' में पूर्वेषाम्' का अर्थ 'देव्य ऋषयः' 'ज्ञानालोकित—हृदया ऋषयः' किया है। 'याथातथ्यतो ऽर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ यजु० ४०.८ से तुलना करें। उसके बाद सब लोगों ने तदनुसार कर्मों का प्रारम्भ किया।" इस पर कोई शङ्का कर सकता है कि वेद अर्थात् किसी विद्वान् की वाणी का इसमें वर्णन है। इस शङ्का को निर्मूल करने के लिये स्वयं देवों ने कह दिया "वह वाणी हमने ब्रह्मणस्पति से प्राप्त की है।" यह ब्रह्मणस्पति ईश्वर पदवाची है।—

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।।ऋ० ९.८३.१॥ तथा सामवेद उत्तरार्चिक द्वि प्रपाठक द्वितीयार्ध मन्त्र १६॥

इसी ब्रह्मणस्पतिः को १५ मन्त्र में 'वाचस्पतिः—विश्वस्येशान ...' ऐसा कहा गया है। अभिप्राय स्पष्ट है कि वह ब्रह्मणस्पति वाणी का स्वामी सृष्टिकर्ता प्रभु ही है। इसी प्रपाठक के १०, १४-१६ मन्त्रों का देवता अर्थात् विषय सोम=पवमान है। इनके अन्दर भी ज्ञान का वर्णन ही है।

सधा वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः सोमो हिनोति मर्त्यम् ॥ ऋ० १.१८.४॥

"उसी ब्रह्मणस्पति को इन्द्र तथा सोम नाम भी दिया है।" इस मन्त्र के हिनोति एकवचनान्त पद से सोम तथा ब्रह्मणस्पति दोनों का एकत्व सिद्ध होता है। हिनोति प्रयोग से ये तीनों एकार्थ सिद्ध होते हैं। तीनों पदों के विशेषार्थक (यौगिक) होने से इनमें 'विशेषण विशेष्य भाव' भी बन जाता है। इन्द्रः=ऐश्वर्यशाली, सोम=सत्प्रेरक ज्ञानप्रेरक, ब्रह्मणस्पतिः=ज्ञानाधिष्ठाता। साधारणतः पर्यायवाची पदों में (घट कलश) विशेषण विशेष्य भाव नहीं होता। ब्रह्मणस्पति विशेषण तो इन्द्र सोम विशेष्य। सोम या इन्द्र 'विशेषण' तो 'ब्रह्मणस्पति' विशेष्य।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इन्द्रं मित्रं वरुणमाग्निमाहुरथो दिव्यः सुर्णो सुप गरुत्मान् ।।
अथर्व० ९.१०.२८।। "इन्द्र अग्नि का नाम है।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ।। यजु० ३२.१ ।।

यह ब्रह्म 'अहं' का अपना नाम है जैसे— ओ३म् खं ब्रह्म ।।
यजु० ४०.१७।।

अथर्व० १०.७ के १९ में 'यस्य ब्रह्म मुखमाहुः' तथा इसी सूक्त के ३३ वे मन्त्र में 'अग्निं यश्चक्र आस्यम्' ऐसा कहा है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि अग्नि तथा ब्रह्म एक है और दोनों का पमेश्वर के मुख=वाणी से विशेष सम्बन्ध है। 'अग्निर्वाग् भूत्वा मुखं प्राविशत्···। यह प्रक्रिया हमने यहां इसलिये दर्शाई है ताकि हम 'वेद से वेद का अर्थ' इस प्रक्रिया को समझ सकें। इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि—

···छन्द्य वचः।। सामवेद पूर्वा० ३.७.३।।

"उस परमेश्वर ने ही छन्दोमयी मन्त्र नाम से प्रख्यात वाणी को देवों के प्रति दिया, तथा देवों से प्रचारित या प्रचरित उसी वाणी को हम बोलते हैं।

ऋग्वेद २.२३ सूक्त का देवता बृहस्पति है। इसके प्रथम मन्त्र में बतलाया गया है कि—

विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि ।।

"हे बृहस्पते! आप सब ब्रह्मों अर्थात् ज्ञानों (वेद मन्त्रों) के (जनिता) प्रादुर्भाव करने वाले हैं।" ज्ञान का मूल स्रोत भगवान् है—

स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वान् ।। यजु० ७.१५ ।।

"बृहस्पति ही सब से पहला ज्ञानी है। उस से ही ऋषियों ने ज्ञान प्राप्त किया।" यह बृहस्पति कौन है? वेद का पढ़ने वाला प्रत्येक विद्वान् यह जानता है कि यह परमेश्वर वाची है। भारतीय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विशाल वाङ्मय के लौकिक साहित्य में बृहस्पति को देव गुरु माना गया है। अभी पीछे ऋ० १.४०.४ में वर्णन कर आये हैं कि—'उसी ब्रह्मणस्पति से दत्त ज्ञान को ही देव·····बोलते हैं।' इस से यह स्पष्ट है कि ये दोनों देव गुरु हैं। यही ब्रह्मणस्पति मन्त्रोपदेष्टा है।

बृहस्पते सवितर्वर्धयेनम् ॥ अथर्व० ७.१६.१ ॥।

तथा अथर्व० ८.१२.२ ॥

"इस प्रकार बृहस्पति का विशेषण सविता दिया है।"

अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम् ॥ ऋ० १.२४.३ ॥

"इस सविता का पर्यायवाची ईशान है।" परन्तु—

पुरुष एवेदं·····। उतामृतत्वस्येशानः ॥ यजु० ३१.२ ॥

"यह ईशान पुरुष परमेश्वर वाची है।" परमेश्वर की भिन्न-भिन्न शक्तियां हैं। वह एक होता हुआ भी शक्तिभेद से भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है।

सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति ॥

॥ ऋ० १०.११४.५ ॥

"उस परमेश्वर के ज्ञानदातृत्व रूप कार्य को प्रगट करने वाले बहुत से नाम हैं।"

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानः महः ज्योतिषः परमे व्योमन् ॥

अथर्व० २०.८८.४ ॥

"इन्हीं में से एक नाम बृहस्पति है, जो कि सब से प्रथम प्रगट होता है। अर्थात् ज्ञान-दातृरूप से परमेश्वर सर्गादि में प्रकाशित होता है।" इस बृहस्पति ने इस ज्ञान को दिया कैसे? यह निम्न रूप से बताया गया है—

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत् प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः॥

ऋ० १०.७१.१ ॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"सृष्टि के प्रारम्भ में शब्दों के नाम रूप को ग्रहण करते हुए ऋषियों के हृदय में बृहस्पति ने अपनी सर्व श्रेष्ठ वाणी वेद को प्रेरित किया।" इस में प्रथम तथा अग्र इन दो शब्दों से हम यही विशेष भाव निकाल सकते हैं कि सर्गादि में इश्वरीय ज्ञान दिया गया।

हे वाणी के स्वामिन् प्रभो (या विद्वन्) (प्रथमम्) सृष्टि के आदि में (वाचः अग्रम्) समस्त वाणियों की मूल (नामधेयं दधानाः) सृष्टिगत पदार्थों के नामों को धारण करने वाली (यत्) जिस वाणी को विद्वान् लोग (प्रैरत) बोलते हैं····· (तद्) वह वाणी (एषाम्) इन ऋषियों की (गुहा निहितम्) अन्तः करण में धारण की हुई है, वह (प्रेणा) ईश्वर की प्रेरणा से (आविः) प्रकाशित होती है।

सृष्टि के आदि में प्रकाशित होने से इस वेद वाणी को 'प्रथमम्' कहा है। वेद वाणी से ही सब भाषाएँ निकली हैं, इसीलिये इसे 'वाचः अग्रम्' कहा है। सब पदार्थों के नामों तथा कर्म की निर्धारक होने से इस वाणी को 'नामधेयं दधानाः' कहा है। [सर्वेषां तु नामानि मनु० १.२१] सर्वश्रेष्ठ विस्तृत विशाल होने से 'श्रेष्ठम्,' दोष रहित होने से 'अरिप्रम्', अन्तःकरण में निहित=प्रविष्ट (ऋ० १०.७.१.४) होने से 'निहितं गुहा' और भगवान् की प्रेरणा से प्राप्त होने के कारण 'प्रेणा आविः' कहा गया है।

अथवा—हे विद्वन्! सृष्टि के प्रारम्भ में (नामधेयं दधानाः) केवल नाम को धारण करते हुए ऋषिगण (यत् वाचः अग्रम्) जिस, वाणी के सब से पूर्व विद्यमान स्वरूप को (प्र+ऐरत) बोलते हैं, बुलवाते हैं; और (यत्) जो यह (एषाम्) इन का (श्रेष्ठम्-अरिप्रम्) अत्युत्तम और निर्दोष ज्ञान+वचन होता है (तत्) वह (एषाम्) इन ऋषियों के (गुहा-निहितम्) अन्तःकरण में स्थित= प्रविष्ट (प्रेणा) परमेश्वर की प्रेरणा से ही (आविः) प्रगट होता है। अर्थात् सर्गारम्भ में परमेश्वर की प्रेरणा से ही ज्ञान+वाणी का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऋषि-हृदयों में प्रकाश होता है; 'वाचः अग्रम्' 'श्रेष्ठम्' अरिप्रम्..... होता है।

ये सब विशेषतायें वेद में ही चरितार्थ होती हैं।

"हे बृहस्पते ! (वेद के स्वामिन् !) (प्रथमम्) सर्गारम्भ में सबसे पहिले (वाचः अग्रम्) दूसरी वाणी से पूर्व (नामधेयं दधानाः) वस्तुओं का नाम रखते हुए (यत् प्रैरत) जिसका ऋषिगण उच्चारण करते और करवाते हैं और जो (एषाम् श्रेष्ठम् अरिप्रम्) इनका अत्युत्तम और निर्दोश वचन होता है; वह (एषाम्) इन ऋषियों को (गुहा निहितम्) हृदय गह्वर=अन्तःस्थली में स्थित या प्रविष्ट हुआ (प्रेणा) परमेश्वर की प्रेरणा से ही (आविः) आविष्कृत=आविर्भूत=प्रगट=प्रकाशित होता है।"

इस से ज्ञात होता है कि :—

(१) बृहस्पति=ईश्वर वाणो का=ज्ञान का स्वामो है। वह सदसस्पति है, ब्रह्मणस्पति है।

(२) वह वाणो=ज्ञान=वचन ऋषियों के अन्तकरण में ईश्वर प्रेरणा से प्रस्फुरित=उत्पन्न होतो है।

(३) ऋषिगण हृदय से निकाल कर उसी वाणी के द्वारा अन्य समस्त वस्तुओं के नाम आदि उच्चारण करते हैं।

उच्चारण करना सहज है। उच्चारण कुछ वर्णों-अक्षरों का होता है। ये अक्षर नित्य हैं।

शब्द अक्षर-समूह का नाम है। किस अक्षर या शब्द समूह का अर्थ है, यह सर्गारभ में किसी को भो पता नहीं हो सकता; जब तक कि कोई इसकी प्रेरणा हृदय में न करे फिर वाणी (अर्थात् वाग्+अर्थ; शब्द+तात्पर्य) का नियत प्रयोग आम्भ हो गया। 'नामधेयं दधानाः' में यही भाव निहित है।

हृदय में प्रेरणा के लिये किसी के मुख का वचन व स्वयं कानों से सुनना आवश्यक नहीं। 'स्वयं तदन्तः—करणेन गृह्यते'। इस

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हृदय में हुई प्रेरणा को शुद्धान्तः करण वाला मनुष्य (ऋषि) बिना किसी के मुख से कहे और बिना अपने कानों से सुने ही अच्छी तरह समझ' लेता है। उसे ज्ञान हो जाता है, किस शब्द का क्या अर्थ है इसका पता चल जाता है। तब वह अन्यों को अच्छी तरह समझा देता है कि इस शब्द का वाच्य अमुक अर्थ है···अमुक पदार्थ का वाचक यह शब्द है।···इस सरस्वती की धारा प्रवाहित होने लग जाती है। यह प्रक्रिया सर्वथा वैज्ञानिक व युक्तियुक्त है। ऋषि दो प्रकार के होते हैं यह पूर्व लिखा जा चुका है। तथा—

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम्।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभि अभि सं नवन्ते॥

ऋ० १०. ७१. ३॥

"ऋषियों में प्रविष्ट हुई हुई उस सप्त छन्दोमयी वेद-वाग् को अन्य पुरुषों ने यज्ञ (पूर्वपुण्य या संगति- पारस्परिक अध्ययनाध्यापन) द्वारा पीछे प्राप्त किया और इस प्रकार उस वेद वाग् का सर्वत्र प्रचार होता है। अर्थात् (वेद) वाणी का प्रकाश सबसे प्रथम ऋषियों के अन्तःकरण में होता है। पीछे यज्ञ=उनकी संगति द्वारा मनुष्य उसे प्राप्त करते हैं।" (वाचः पदवीयम्) उस वाणी के एक एक पद से प्राप्त करने योग्य ज्ञान को (यज्ञेन) परस्पर की संगति से या सम्मेलनों Conferences से (आयन्) प्राप्त करते हैं। मनुष्य (ऋषिषु) ज्ञान का साक्षात्कार अन्तःकरण में करने में समर्थ ऋषियों में (प्रविष्टाम्) प्रविष्ट=प्रकाशित या स्फुरित हुई [निहितं गुहाविः—ऋ० १०.७१.१] (ताम्) उस वाणी को [अनु-अविन्दन्) [उन) ऋषियों से उपदेश के अनन्तर ही प्राप्त करते हैं। (ताम् आभृत्य) उसको प्राप्त करके ही वे (पुरुत्रा) बहुत से स्थलों में (वि-आ-दधुः) विविध प्रकार से उपदेश करते हैं (ताम्) उसको ही (सप्त रेभाः) सातों छन्द (अभि सं नवन्ते) साक्षात् उपदेश करते हैं।

अर्थात् जिस वाणी के पद पदार्थ का ज्ञान मनुष्य संगति (ज्ञान गोष्ठी द्वारा करते हैं,। उसका प्रथम साक्षात्कार ऋषि करते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पश्चात् मनुष्यों ने उनसे उपदेश द्वारा उसे प्राप्त किया और सर्वत्र अन्यों के प्रति प्रकाश किया। वही सात छन्दों में निबद्ध है। निरुक्त के अनुसार 'सप्त' का निर्वचन 'सर्पण' है। (रेभृ शब्दे) वही वाणी एक सन्तति से दूसरी सन्तति में सरकती आती है। उसी का नाम 'सरस्वती'=प्रवाह से आने वाली है।

इस मन्त्र के यज्ञ शब्द का अर्थ परमेश्वर भी कर सकते हैं। 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः' यज्ञ रूप परमेश्वर से वेद वाणी प्राप्त की गई।)

इमां धियं सप्तशीर्षणीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत्।
तुरीयं स्विज्जनयद् विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शासन्॥

ऋ० १०.६७.१॥ अथर्व० २०.९१.१॥

"हमारे पिता (अर्थात् जिसने हमें उत्पन्न किया स्रष्टा) उसी ने सात शीर्ष= छन्दों वाली वाणी को हमें दिया है।" सप्तशीर्षणीम्=पंच ज्ञानेन्द्रिय तथा मन और (बुद्धि द्वारा ग्राह्य। इस छन्दोमय वाणी (छन्द्यं वचः साम० पूर्वा० ३.७.३) समस्त साहित्य में वेद संज्ञा प्रसिद्ध है। यह 'वेद' शब्द नानार्थों में भी प्रयुक्त है। इस प्रसिद्ध 'वेद शब्द' (= पद, संज्ञा) के विषय में वेदों की अन्तः साक्षी क्या है, उस पर विचार करना चाहिये॥

वेद शब्द और उसका अर्थ

स्वर भेद से दो प्रकार का वेद शब्द प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। एक है आद्युदात्त 'वेद' दूसरा है अन्तोदात्त 'वेद'। आद्युदात्त वेद शब्द प्रथमा के एक वचन (वेदः। ऋ० १.७०.५ व ऋ० ३.५३.-१४॥) में ऋग्वेद में पद्रह बार प्रयुक्त हुआ है। और तृतीया के एक वचन (वेदेन=स्वाध्यायेन इति वेंकट माधवः। तथा वेदेन =वेदाध्ययनेन ब्रह्म यज्ञेन इति सायणाचार्यः ऋ० ८.१९.५) में एक बार। अन्तोदात्तवेद शब्द ऋग्वेद में नहीं मिलता। यजुर्वेद और अथर्ववेद में अन्तोदात्त (वेदः) यजु० २.२१॥ अथर्व० ७.२९.१ में पाया जाता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आद्युदात्त 'वेद' शब्द वेद अर्थ में ऋग्वेद में एक स्थान पर भी नहीं आया। जहां यह आया है वहां सर्वत्र यह धन वाची 'वेदस्' शब्द है।

वेद के इन्हीं दो प्रकारों का ध्यान करके पाणिनी मुनि ने उञ्छादि (६.१.६०) और वृषादि (६.१.२०३) दो गणों में वेद शब्द दो बार पढ़ा है। इन में उञ्छादि पठित वेद शब्द करण अर्थ में अन्तोदात्त है और वृषादि गण का शेष सब अर्थों में आद्युदात्त है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने सौवर ग्रन्थ में उञ्छादि सूत्र की व्याख्या करते हुए लिखा है—"करण कारक में प्रत्यय किया हो तो घञन्त वेद [वेद वेष्ट बन्ध] आदि चार शब्द अन्तोदात्त हो..... वेत्ति येन स वेदः। ..... और भाव वा अधिकरण में प्रत्यय होगा तो आद्युदात्त ही समझे जावेंगे॥"

अथर्व वेद में 'वेद' आद्युदात्त शब्द दो बार केवल 'वेद' (ज्ञान मय मन्त्रमय वस्तु, अर्थ में आया है।

एष मा तस्मान्मा हिंसीद् वेदः पृष्टः शचीपते॥ अथर्व० ७.५१.१।

ऋचः प्रञ्चस्तन्वतो यजूँषि तिर्यञ्चः। वेद आस्तरणं ब्रह्मोपबर्हणम् साम आसद उद्गीथ उपाश्रयः॥ अथर्व० १५.३.६-७॥

इन दोनों स्थलों पर ऋग् यजुः साम अथर्वादि का प्रसंग होने से इसका अर्थ 'वेद चतुष्टय' ही है। इसी प्रकार—

वेदेन रूपे व्यपिबत् सुतासुतौ प्रजापतिः॥ यजु० १९.७८॥

'प्रजापति वेद ज्ञान द्वारा इन्द्रिय ग्राह्य और अतीन्द्रिय दोनों प्रकार के (अर्थात् मूर्त्त और अमूर्त्त) रूपों का ज्ञान पिलाता है।" ऐसे ही—

यो वेदेन ददाश मर्त्तो अग्नये॥ ऋ० ८.१९.५॥

"जो यज्ञशील पुरुष वेद से अर्थात् वेद के अध्ययन मनन श्रवणादि से अपने आप को तेजस्वी प्रभु के लिये समर्पित कर देता है"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेदों में अनेक स्थलों पर वेदवाचक वाक्, गीः, वर्चस् ,श्रुतिः आदि शब्दों का प्रयोग है ॥ (यजु० १८.१ शृण्वन्ति सकला विद्या यया सा वेदाख्या ॥ [ऋषि दयानन्द]

मन्त्रों में अनेक वेदों का उल्लेख

समस्त वैदिक सम्प्रदाय इस बात पर सहमत हैं कि वेद चतुष्टय में आये मन्त्र अपौरुषेय (ईश्वरीय) हैं। ..... इस लिये यदि मन्त्रों में बहुवचनान्त 'वेदाः' पद आ जावे तो निश्चय जानना चाहिये कि आदि से ही वेद बहुत चले आये हैं। निःसन्देह पुराणों में 'पहिले एक वेद' था। पर वेद की अन्तः साक्षी स्वयं इस के विरुद्ध है। वहां 'वेदाः'ऐसा वर्णन है तथा स्थान स्थान पर स्पष्ट हो वेद चतुष्टय का वर्णन है।

यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपाः ॥ ऋ० ४.३५.६ ॥

"जिस परमेश्वर में समस्त विद्याओं के भण्डार वेद स्थित हैं।"

ब्रह्म प्रजापति र्धाता लोका वेदाः सप्त ऋषियोऽग्नयः ॥

अथर्व० ॥ १९.९.१२॥

"प्रजापति, धाता ब्रह्म परमेश्वर, समस्त लोक, ज्ञानमय चार वेद.....शरीरस्थ सात इन्द्रियें, पंच प्राण, त्रिविध अग्नियां.....मुझे देवें ॥" यहां भी 'वेदाः' बहुवचनान्त पद आया है। इस मन्त्र पर भाष्य करते हुए श्री सायणाचार्य ने लिखा है—

वेदाः साङ्गाश्चत्वारः ॥

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि वेदों की अन्तः साक्षी एक वेद न मानकर 'अनेक वेद' मानती है। इस लिये द्वापरान्त और कलियुग के प्रारम्भ में कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास ने 'एक वेद' को चतुर्धा कल्पित किया, यह प्रतीति निराधार है।

इसलिये महर्षि दयानन्द का अपने जगत्प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के एकादश समुल्लास में निम्न वाक्य लिखना सर्वथा सत्य है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

" .....जो कोई यह कहते हैं कि वेदों को व्यास जी ने इकट्ठे किये, यह बात झूठी है। क्योंकि व्यास के पिता पितामह प्रपितामह पराशर शक्ति वसिष्ठ और ब्रह्मा आदि ने भी चारों वेद पढ़े थे।

तदपि व्यासस्य वेदविभक्तृत्वं तावत् संहिता ब्राह्मणारण्यकोपनिषदादिग्रन्थेषु निरुक्तादिवेदांगेषु कल्पसूत्रादिष्वपि वेदसम्बद्धेषु प्रसिद्धम्। यजु-तैत्ती-पृ० १६ भूमिका। श्री सातवलेकर प्रकाशित स्वाध्याय मण्डल, पो० पारडी जि० सूरत।

इस विषय में एक यह बात भी स्मरण रखनी चाहिये कि स्व पुराणकार भी 'आद्य एक वेद' को चतुष्पाद मानते हैं; उस चतुष्पा को 'चतुर्धा' विभक्त किया—ऐसा मानते हैं।

आद्यो वेदश्चतुष्पाद्..... वेदमेकं चतुष्पादं चतुर्धा व्यभजत् प्रभुः। ।। वायु पुराण।

आद्यो वेदश्चतुष्पाद्..... एक आसीत् यजुर्वेदः, तं चतुध व्यकल्पयत्।। अग्नि पुराण।।

इस का अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि प्राचीनकाल में अर्थात् वैदिक युग में अधिक शास्त्रों का पठन नहीं था। इसलिये पढ़ने वाले 'चतुष्पाद वेद' अर्थात् वेद विषय का स्वाध्याय करते थे। पीछे से शास्त्रों की संख्या बढ़ती गई, वेदाध्ययन कुछ कम होने लगा तब महर्षि वेद व्यास ने एक-एक वेद को एक-एक के द्वारा पढ़ने पढ़ाने का विधान कर दिया। जिसका परिणाम समय गुजरने पर चतुर्वेदी त्रिवेदी, द्विवेदी हो गया। जब इस प्रकार एक-एक वेद का पृथक् पृथक् पाठ-पारायण प्रारम्भ हो गया तो उस-उस वेद की शाखा आदि भी बननी प्रारम्भ हो गईं।.....भारतवर्ष में पहिले वेदों का खूब अध्ययन अध्यापन होता था। उसी समय 'द्विवेदी' 'त्रिवेदी' और 'चतुर्वेदी' कहने कहाने की प्रथा चली। एक वेदी या पंचवेदी कहने कहाने की लोक प्रथा नहीं है। इसका क्या कारण है? यही कि वेद एक नहीं और केवल तीन भी नहीं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यह निर्वचन विद्वानों को सर्वथा नवीन मालूम पड़ेगा। पर यदि वैदिक वाङ्मय के इतिहास पर एक विवेचनात्मक विश्लेषणात्मक विवेकपूर्ण दृष्टि डालेंगे तो उन्हें निश्चय ही इस स्थापना की सचाई पर विश्वास होगा। क्योंकि पुराणों मे (विष्णु पुराण) यह साफ लिखा है कि 'वीर्य तेज बल' जब लोगों के घट गये अर्थात् "चारों वेदों"=समग्र वेद को पढ़ने का सामर्थ्य और उत्साह घट गया, तो जनहित के लिये कृष्णद्वैपायन ने 'चतुष्पाद' वेदों को चतुर्धा विभक्त कर दिया अर्थात् एक-एक हिस्सा एक-एक टोलो के सुपुर्द कर दिया।.....इसी लिये उसका नाम वेद व्यास प्रसिद्ध हुआ।

अब तक के विवेचन से यह स्पष्ट हो गया कि उस 'छन्दोमयी वाणी' का वेद नाम है। 'वेदाः' बहुवचनान्त प्रयोग यह बताता है कि वे अनेक हैं। इस पर विस्तार से विवेचन करने से पूर्व एक अन्य विषय पर अब हमें विचार करना चाहिये सर्गादि मे ज्ञान देने की आवश्यकता है या नहीं ? और वेद का इस विषय में क्या मत है ?

इस समय ज्ञान भाषा वाणी के विषय में दो मत हैं। एक तो यह कि धीरे-धीरे इनका विकास हुआ। जब प्रारम्भ में मनुष्य-मनुष्य रूप में आया उस समय वह 'अज्ञानी मूक' था। धीरे-धीरे वह समझने लगा और बोलने लगा।.....दूसरा यह कि सर्गादि में सृष्टि होने के साथ ही मनुष्य बोलता था। उस के पास भाषा और वाणी दोनों थे।.....उसके बाद सारस्वत में वृद्धि हुई। इस में दोनों पक्ष वाले एक मत हैं अर्थात् 'अनुकरण' से मानव जाति ने बहुत कुछ सीखा, बढ़ाया। इस विषय में वेद का भिन्न अभिप्राय है।

अग्निर्धिया स चेतति केतुर्यज्ञस्य पूर्व्यः अर्थं ह्यस्य तरणिः ॥
॥ ऋ० ३.११.३ ॥

"संसार-यज्ञ का पूर्वगामी=पूर्व से विद्यमान तेजस्वी परमेश्वर ज्ञानी है; वह (चेतति चेतयत्यर्थः) जोव को ज्ञान देता है=चेताता है, क्योंकि इस संसार यज्ञ की तरणि=तारक 'अर्थ'=ज्ञान ही है।"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्थात् ज्ञान दिये विना जीव जीवन में अपने व्यापार करने में असमर्थ है। उस को आंख और देखने की शक्ति जैसे दी है; वैसे ही जिह्वा और वक्तृत्व शक्ति दी है, हृदय और मस्तिष्क दिया है। इस लिये चेतना देनी आवश्यक है। उसी समम 'वागर्थ' भी इकट्ठे चले, इसीलिये जीव चाहता है कि—

या ते अग्ने पर्वतस्येव धारा सश्चन्ती पीपयद्देव चित्रा।
तामस्मभ्यं प्रमति जातवेदो वसो रास्व सुमतिं विश्वजन्याम् ॥
॥ ऋ० ३.५७. ६ ॥

"हे अग्नि देव ! हे वसो ! जातवेदः सर्वज्ञ भगवन् ! जो तेरी पर्वतधारा के समान प्रवाहशील अर्थात् वेद सरस्वती कहीं न रुकने वाली विचित्र (वेदमयी) ज्ञानधारा निरन्तर ज्ञान देती है, हमें वह उत्तम बोधक सर्वजन हितकारिणी=विश्वजन्या (वेद रूप) सुमति दीजिये।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ॥ यजु० २६.२ ॥
यथा भगस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु ॥ अथर्व०

क्योंकि उसे यदि ज्ञान न दिया जावे तो वह आगे अपनी सरस्वती का विकास कर ही नहीं सकता। कारण यह—

ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः ॥
॥ ऋ० ४.२३.८ ॥

"—समझाया हुआ शुद्ध ऋतलोक=परमेश्वर का दिया ज्ञान ही मनुष्य के बहरे कानों को खोलता है। ऋतलोक=सत्यवाणी (सत्यं वाचम्। ऋ० ३.२६.९)।

वचोविदं वाचमुदीरयन्तीं विश्वाभिर्धीभिरुपतिष्ठमानाम्।
देवीं देवेभ्यः पर्येयुषीं गामावृक्त मर्त्यो दभ्रचेताः ॥
॥ ऋ० ८.१०१.१६ ॥

"वाणी को प्राप्त करने वाली रहस्य उद्घाटन करने वाली वाणी को उन्नत करने वाली, वागिन्द्रिय को बुलवाने वाली, सब

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रकार के विचारों से स्थित=पूर्ण दिव्य वाणी-वेदवाक् को अल्पज्ञ मनुष्य को कभी त्यागना नहीं चाहिये।" क्योंकि—

निधीयमानमपगूळहमप्सु प्रे मे देवानां व्रतपा उवाच।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम्॥
ऋ० १०.३२.६॥

"परिणामशील प्रकृति की सूक्ष्म तन्मात्राओं में रक्खे जाते हुए अत्यन्त गूढ विषय को (मैं) मुक्त जीव के लिये देवों के व्रत रक्षक ने उत्तम प्रकार से उपदेश दिया है। इन्द्र ज्ञानी ही तुझे ठीक ठीक बतावेगा। हे अग्ने उससे अनुशिष्ट=शिक्षित हो कर ही मैं इस संसार में आया हूँ।" सर्गादि में प्रथम ऋषि का कथन है कि "मैंने प्रभु से सीखा है, तुझे आगे ज्ञानी गुरु बतावेगा। मैं सीख कर ही आया हूं।" क्योंकि—अप्सु=आप्लृ व्याप्तौ। व्यापनशील, फैलने वाली संकोच से विकास को प्राप्त होने वाली, प्रपंच रूप में परिणत होने के योग्य, विकार्य···प्रकृति जब अव्यक्त दशा से व्यक्त दशा को (अर्थात् संकोच से विकास को) प्राप्त होती है, तभी यह संसार बनता है।

आयो धर्माणि प्रथमाः ससाद, ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि
धास्युर्योनिं प्रथम आविवेश यो वाचमनुदितां चिकेत॥
अथर्व० ५.१.२॥

"जो प्रथम आदि गुरु भगवान् सबसे पूर्व सब धर्मों=कर्त्तव्यों= धारक नियमों को जानता है अथवा जिसने सब धारक नियमों को पहिले बनाया उसके बाद अनेक शरीरों को बनाता है; फिर धास्य= जीवात्मा का शरीर में प्रवेश कराता है और फिर जो (सर्गारम्भ में) अनुदित=अव्यक्त वाणी को चिताता है सिखाता है।" इस मन्त्र में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में पहिले जगत् के धारक, धारक विधानों का बनाना, फिर शरीरों=योनियों और उनमें जीवात्मा का प्रवेश और फिर उसे सिखाया जाना इसका वर्णन है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इसके बाद अनुकरण द्वारा अर्थात एक सन्तति से दूसरी सन्तति उस ज्ञान धारा को प्राप्त करती जाती है इसलिये वेद में प्रार्थना है कि—

अवन्तु नः पितर सुप्रवाचना उत देवी देवपुत्रे ऋतावृधा ॥
ऋ० १ १०६ ३॥

"उत्तम प्रवचन करने वाले=पढ़ाने और उपदेश करने वाले पितर=बड़े लोग=पूर्वज·····हमारी रक्षा करें ।" इन पितर सुप्रवाचको का भी पितर परमेश्वर है । वेद में कहा है—

शतधारमुत्समक्षीयमाणं विपश्चितं पितरं वक्त्व-वानाम् ।
मेळिं मदन्तं पितरोरूपस्थे तं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम् ॥
ऋ० ३.२६.९॥

"इन वक्ताओं को सैकड़ों उगों से जगत् को धारण करने वाले, कभी क्षीण न होने वाले=नित्य, सबके आदि स्रोत, महाज्ञानी····· सत्यवाणी=निभ्रान्त वेदवाणी वाले पितर को द्यावा पृथिवी धारण कर रहे हैं अर्थात् वह सर्वत्र व्यापक है।"

यदि सर्गादि में ही मानव को ज्ञान (वागर्थ) न दिया जावे तो ज्ञान की सरस्वती आगे बह नहीं सकती । हजारों वर्षों से वानर या अन्य पशु पक्षी उसी प्रकार से अपने सुख का प्रयोग कर रहे हैं जैसे उनके पूर्वज, ठीक इसी प्रकार मानवजाति की बात है । जैसे आज कल मानव 'बोलता है, सुनता, समझता है' वैसे ही सनातन काल में उसके पूर्वज 'बोलते, सुनते, समझते' थे । यह 'बोलना सुनना समझना प्रब्रवाम, शृणुयाम, बुध्येम किसी विकास का परिणाम नहीं है । वेद में लिखा है कि—

ऋतं चिकित्व ऋतमिच्चिकिद्धि, ऋतस्य धारा अनुतृन्धि पूर्वीः ॥ ऋ० ५.१२-२॥

"हे ज्ञानभिलाषिन् जीव! तू ऋत को वार वार जान । ऋत की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सनातन काल से चली आ रही धारा को अनुकूलता से अपने लिये चीर, खोल। अर्थात् रहस्यों को जान।"

वेदद विद्वाञ्छृणवच्च ॥ ऋ० ५.१०.३॥

"जो विद्यारहित मनुष्य है वह इस 'ऋतस्य पूर्वी धारा' को जानने का यत्न करे और सुने।" ऐसा कौन करावे ? आप्तविद्वान्। आप्त=आलृ=व्याप्तौ। व्यापक (कम्प्रिहेन्सिव) ज्ञान रखने वाला।

विद्वान् वहते ॥ ऋ० ५.१०.३॥=विद्वान् विद्याप्राप्त कराता है। विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें।' (सत्यार्थ प्रकाश भूमिका)।

संसार में सब ज्ञानी नहीं हैं। वैसे जीव न पूर्ण ज्ञानी हो सकता है। जीव एक दूसरे से बहुत कुछ सीखते सिखाते हैं।

अक्षेत्रवित्क्षेत्रविदं ह्यप्राट् ॥ ऋ० १०.३२.७॥

"जो अज्ञानी है वह ज्ञानी से पूछता रहता है।" जो जिज्ञासु है, समझदार है वह दूसरे विद्वान् की बात को समझता है। हृदय में ग्रहरण कर सकता है।

कविं शशासुः कवयो ऽदब्धाः·····। ऋ० ४.२.१२॥

"आत्मा की आवाज को न दबने देने वाले कवि हो अपने जैसे अन्य कवियों को कुछ शिक्षा देते हैं, सिखा सकते हैं।"

ऐसी दशा में मनुष्य का सर्गादि में 'आदि कवि' परमेश्वर से 'ज्ञान शिक्षा' लेना आवश्यक है। (कविः मनीषीः·····याथातथ्यो-ऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः। यजु० ४०.८) क्योंकि—

वनेम पूर्वीरयो मनीषा ··मानुषस्य जनस्य जन्म ॥ ऋ०१.७०.१॥

"मनुष्य योनि में आने योग्य हम जीवों का जन्म इसीलिये है कि हम (अर्यः परमेश्वरस्य) परमेश्वर के (पूर्वीः मनीषाः=) सत्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ज्ञान को ग्रहण करें।" अर्यः='अरि' शब्द का षष्ठी एक वचन। अरिः=ऋ० गतौ। गतेस्त्रयोऽर्थाः—ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्च ॥

इस उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेद की अंतः साक्षी के अनुसार "सर्गादि में ज्ञान को देने की आवश्यकता है। उसके बिना ज्ञान का प्रारम्भ हो ही नहीं सकता। उस परमेश्वर ने सब से प्रथम ऋषियों के हृदय में ज्ञान स्थापित किया। वह काव्य रूप था। उसमें मन्त्र थे और छन्दोमयी रचना थी। वह अनेक भागों में विभक्त था। अब हमें यह देखना चाहिये कि उस काव्य के पारिभाषिक नाम कौन कौन से हैं? उस छन्दोमयी वाणी या देवकाव्य या कल्याणीवाक् या दैवीवाक् को ब्रह्म, छन्दः, मन्त्र, वेद तथा श्रुति भी कहते हैं। जैसे—

ब्रह्म=ऋ० २.२३.२ में 'ब्रह्मणां जनिता' तथा 'ब्रह्मा ब्रह्म दधातु' आदि से यही मालूम पड़ता है।

छन्दः=अथर्व० ४.३४.१, तथा ८.९.१७,१९ में। अथर्व० ६.१२४.१॥ छन्दोभिर्यज्ञैः सुकृतां कृतेन ॥

मन्त्रः=अथर्व० ५.१.२; ५.२.१३ तथा यजु० ३४.५३, ऋ० १०.५०.६ तथा ऋ० ६.५०.४॥

"विश्वेदेवा ऋतावृधः हुवानाः स्तुता मन्त्राः' तथा ऋ० ३.५३.८ में 'रूप रूपं..... मघवा सर्वमन्त्रैः ऋतावा।' तथा 'मन्त्रं वदत्युक्थम्' में भी यही अर्थ है।

वेदः=वेद शब्द इसी अर्थ में निम्न स्थलों पर आया है। अथर्व० २०.५६.६; ७.५४ सूक्त में; ६.२८.१; यजु० २.२१; १९.७८ में तथा ऋ० १.४३.९ में आया है। अथर्व० ४.५ में लिखा है कि 'वेदा विहिताः' तथा ऋ० १.८१.९ में 'अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषा...। इन स्थलों के पढ़ने से 'वेद' शब्द का यही अर्थ प्रतीत होता है।

श्रुतिः—यजु० १८.१ (शृण्वन्ति सकला विद्या यथा सा वेदाख्या) ऋषि दयानन्द भाष्य।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस वेद नाम के विषय में ऊपर विस्तार से विचार किया है। इस का लोक में एक प्रसिद्ध नाम 'ऋचा' भी है।

स वा ऋग्भ्यो ऽजायत, तस्मादृचोऽजायन्त ॥ अथर्व० १३.४.३८॥
वेदहेतुरपि ब्रह्म तद्वेदादेव गीयते ॥ लघुवार्त्तिक १.१.३ ॥

"ऋचाएं प्रभु से प्रकट हुई हैं" और "प्रभु ऋचाओं से प्रगट हुआ है।" अर्थात् ऋचाओं को पहले उसने बनाया, फिर उन ऋचाओं द्वारा ही हम उसकी महिमा को जान सकते हैं; इसीलिये इन सुन्दर आलङ्कारिक काव्यमय शब्दों में उसे ऋचाओं द्वारा उत्पन्न कहा गया है।

वेदिक ऋचाएं कहने से भी लोक में चारों वेदों को ऋचाए यही अर्थ लिया जाता है। अथर्ववेद में आया है कि 'अथर्वणेभ्यो ऋचाभ्यः स्वाहा' इससे भी यही साबित होता है—ऋचा नाम चारों वेदों का है। इसी वेद के परिभाषिक ऋचा नाम को लेकर निम्न वर्णन किया गया है—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति ॥ अथर्व० ९.१०.१८ ॥

"जिस परम, अविनाशी, आकाशवत् व्यापक प्रभु में ऋचाएं और संसार की समस्त भौतिक तथा अभौतिक शक्तियां आश्रित हैं, उस प्रभु को जिसने नहीं जाना, उसका भला वेद भी कैसे कर सकता है ?" इसके लिये दो और प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं—

(क) ऋचेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ यजु० १८.३३ ॥
(ख) ऋचा कपोतं नुदत प्रणोदमिषं मदन्त ॥ अथर्व ६.२८.१ ॥

"इन से भी यही स्पष्ट होता है कि 'ऋचा' से अभिप्राय चारों वेदों से है।"

अब तक के विवेचन से स्पष्ट हो गया है कि उस काव्य का नाम ब्रह्म, छन्द, मन्त्र, वेद, श्रुति तथा ऋचा है। लोक में वेद शब्द के पर्याय श्रुति, आम्नाय, छन्दस्, ब्रह्म, निगम, प्रवचन भी हैं। शतपथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१३.४.३.१३ के अनुसार वेद के लिये 'पुराण' पद का प्रयोग भी मिलता है।

"अध्वर्युस्ताक्ष्ये वै पश्यतो राजयेत्याह।...पुराणं वेदाः सोऽयमिति किञ्चित् पुराणमाचक्षति।"

इनमें से ब्रह्म छन्द तथा ऋचा इनका अपना अपना अलग अर्थ भी है। जैसे—

ब्रह्म पदवीयं ब्रह्मणो ऽधिपतिः॥ अथर्व० १२.५.६॥

"ब्रह्म का अर्थ ज्ञान, अथर्व वेद तथा परमेश्वर; छन्द का अर्थ, छन्द जिनमें कि पद्य रचना की जाती है और ऋचा का अर्थ ऋग्वेद है।"

अब हम उसके विभागों पर विचार करते हैं। हमें वेद के पढ़ने से यही ज्ञात हुआ है कि उस वेद के चार भाग हैं।

चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादाः, द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति, महो देवो मर्त्यान् आविवेश॥
ऋ० ४.५८.३॥ यजु० १९ ९॥

प्रायः समस्त वैदिक विद्वान् 'चत्वारि शृङ्गा' का अर्थ चारों वेद करते हैं। इस मन्त्र के अनेकार्थ हैं, जिनमें से यज्ञपरक अर्थ गोपथ ब्राह्मण में दिया है। 'एष वै महान् देवो यद् यज्ञः।' चारों वेदों को इस यज्ञ रूप वृषभ के 'चार शृङ्ग' कहा गया है। एक अन्य प्रकरण में भी गोपथ ब्रह्मण (पू. भा. २.१६) में इसका अर्थ चार वेद ही किया है। "चत्वारि शृङ्गेति वेदा वा एत उक्ताः।" कठ ब्राह्मण में इसका अर्थ लिखा है—"चत्वारि शृङ्गा इति वेदा वा एतदुक्ताः॥ अर्थात् 'चत्वारि शृङ्गा' प्रतीक वाले प्रसिद्ध मन्त्र से चारों वद अभिप्रेत हैं।

डा० कालण्ड द्वारा सम्पादित काठक संहिता ४०.७ में लिखा है।

"चत्वारि शृङ्गा इति वेदा वा एतदुक्ताः। सवनक्रमेण ऋग्भिर्-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऋग्भिः सामभिरथवभिर्यदेनमृग्भिः शंसन्ति यजुभिर्यजन्ति साम्नभिः स्तुवन्ति अथर्वभिर्जयन्ति ॥···चत्वारि शृङ्गाश्चतुर्मुखाश्चतुर्वेदश्चतुर्युगाः ।···"—वैदिकवाङ्मय का इतिहास २य भाग पृ० २६६। निरुक्तकार यास्कमुनि ने (निरुक्त परिशिष्ट १.७ में इस पर टिप्पणी देते हुए लिखा है—"वेदा एते उक्ताः ।"

महाभाष्यकार पतंजलि मुनि ने भी इससे वेदचतुष्टय का ही ग्रहण किया है ।" "चत्वारि शृङ्गाश्चत्वारो वेदा एव चत्वारि शृङ्गाणि···।" एक दूसरा प्रमाण भी उद्धृत करते हैं—

पाहि नो अग्न एकया, पाह्युत द्वितीयया ।
पाहि गीभिस्तिसृभिरूर्जां पाहि चतसृभिः वसो ॥ यजु० २७.४३ ॥

इस से यह स्पष्ट मालूम पड़ता है उसकी 'गीः':=वाणी चार भागों में विभक्त है । श्री सायणाचार्य ने भी इस मन्त्र का अर्थ चारों वेद ही किया है ।

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि, तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति, तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥
अथर्व० ९.१०.२७ ॥ ऋ० १०.७१.११ ॥

इन में चार भागों का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया है । इनके अनुसार इन चार भागों को कोष्ठ द्वारा सरलता से समझ सकते हैं । इस मन्त्र का विशेष वर्णन निरुक्त में है ।

१. ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् (ऋग्०)
२. गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु (साम०)
३. ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्याम् (अथर्व०)
४. यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ त्वः (यजु०)

इस मन्त्र में ऋत्विजों के कर्मों का विनियोग बताया गया है। होता, उद्गाता, ब्रह्मा तथा अध्वर्यु के कर्मों का इसमें वर्णन है। होता का ऋग् से, उद्गाता का साम से, ब्रह्मा का अथर्व० से और अध्वर्यु का यजुर्वेद से सम्बन्ध है । इस मन्त्र का विशेष वर्णन निरुक्त में है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

'ब्रह्मा सर्ववित्: सर्वं वेदितुमर्हति' सर्व विद्य होने से अथवाङ्गिरसी श्रुतियों का जानना उसके लिये अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि अथर्ववेद जाने बिना वह ब्रह्मा नहीं हो सकता है। पूर्वोक्त मन्त्र में कथित चार ऋत्विजों में कौन किस किस वेद का पण्डित हो इसे गोपथ ब्राह्मण ने बहुत ही स्पष्ट किया है।

ऋग्वेदमेव होतारं वृणीष्व, यजुर्वेदविदमध्वर्युम्, सामविदमुद्गातारम्, अथर्वाङ्गिरोविदं ब्रह्माणं। तथा हास्य यज्ञः चतुष्पात् प्रतिष्ठति ॥ गोपथ ब्रा० पू० २.२४ ॥

इस प्रकार हम स्पष्ट ही उनके चार भागों को जान सकते हैं। इस सम्पूर्ण काव्य को वेदेतर वाङ्मय में त्रयी नाम से पुकारा जाता है। चारों वेदों में कहीं पर भी त्रयी शब्द नहीं है। भारतीय सारस्वत में भी पहले 'त्रयीविद्या शब्द या वेदत्रयी' नहीं। त्रयी विद्या वेदचतुष्टय में है, उसके निम्न विभाग हैं। पहिला विभाग आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक विषयों के दृष्टिकोण से हम कर सकते हैं। अर्थात् वेद चतुष्टय में इन तीन प्रकार के (अर्थात् जिसमें समस्त ज्ञान आ जाता है ऐसे) ज्ञान को 'त्रयो विद्या' नाम से लोक में प्रसिद्धि है। ज्ञान कर्म उपासना भेद हम त्रयी विद्या को दूसरे एक ढंग से समझ सकते हैं। ऋग्वेद से ज्ञान, यजुः से कर्म तथा साम से उपासना का ग्रहण होता है। इन स्थलों पर ये नाम तीनों वेदों के न होकर केवल मात्र उन तीन प्रकार के ज्ञानों के द्योतक हैं। जैसे कि निम्न मन्त्रों में बताया गया है।

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ॥ यजु० ३४.५ ॥

"जिस हमारे शुद्ध मन में ऋग् साम तथा यजुः इन भागों में विभक्त ज्ञान स्थित है।" अभिप्राय यह है कि, संसार में मनुष्य को तीनों प्रकार का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। जिसने इन तीनों प्रकार की विद्याओं को प्राप्त कर लिया, मानो सम्पूर्ण विद्या का ज्ञान प्राप्त कर लिया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऋचो नामास्मि, यजूंषि नामास्मि, सामानि नामास्मि ॥
यजु० १८.६७ ॥

"वेद में जीव कहता है—'मेरा नाम ऋग् है, यजुः है, साम है अर्थात् मैं इनके स्वरूप वाला हूं ·····तीन प्रकार के ज्ञानों का ज्ञाता हूं।" यही कारण है कि शतपथ ब्राह्मण ४.६.७.१ में ऐसा लिखा है—

"त्रयी वै विद्या । ऋचो यजूंषि सामानि ॥"

यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा ।
यजूंषि होत्रा ब्रूमस्ते नो मुंचन्त्वंहसः ॥अथर्व० १.६.१४ ॥

इस मन्त्र में कई विद्वान् 'भेषजा' का अर्थ अथर्व वेद करते हैं। 'भेषजं वा अथर्वाणि ।' ताण्ड्य महाब्राह्मण । १२.९.१० ॥"

अथर्व १.१०.२३ में एक मंत्र है। 'शरीरं ब्रह्म प्राविशदृचः सामाथो यजुः ॥

शरीर में "ब्रह्म अर्थात् ज्ञान प्रविष्ट हुआ और वह इन तीन—ज्ञान, उपासना तथा कर्म में विभक्त था" ब्रह्म का अर्थ अथर्व वेद भी होता है। यदि वह अर्थ करें तो कि वह पक्ष कि वेद रूपी काव्य चार भागों में विभक्त हैं; बहुत ही स्पष्ट सिद्ध हो जाता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि त्रयी से सम्पूर्ण विद्या अर्थात् वेद का ग्रहण होता है। इसी लिये वेद में कई स्थलों पर 'तिस्रो वाचः' ऐसा आया है।

'वेद की तीन वाणियों' 'तिस्रो वाचः' के विषय में कुछ और मन्त्र नीचे उपस्थित करते हैं—

तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्राः ॥ ऋ० ७.१०१.१ ॥
"हे परमेश्वर ! उत्तम प्रकाश से युक्त तीनों वाणियों का उपदेश कर ॥"

तिस्रो वाच उदीरते ॥ ऋ० ९.३३.४ ॥
"तीनों वाणियां उठती हैं।"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः॥
ऋ० ९.७.३४॥

"(ऋतस्य धीतिम्) सत्यज्ञान की धारक (ब्रह्मणः मनीषाम्) ब्रह्म=परमेश्वर की ज्ञानमयी बुद्धि को (वह्निः) धारण करने वाला विद्वान् (तिस्रः वाचः) तीन वाणियों को (प्र+ईरयति) उपदेश करता है। (गावः) तर्क-वितर्कात्मिका बुद्धियां प्रश्न करती हुई ज्ञान के आदि मूल को प्राप्त होती हैं और (मतयः) मन्तव्यात्मिका= मनन निश्चय रूप बुद्धियां चाहती हुई शान्ति (या उसके अधिपति को प्राप्त होती हैं।"

ये तीन वाणियां क्या हैं? मेरा अभिप्राय है कि—आन्तरिक वाणी, मनुष्य की अपनी वाणी तथा सामाजिक वाणी ये तीन वाणियां हैं। इसी में समस्त ज्ञान अन्तर्हित है। इसका नाम 'त्रयी विद्या है,' जो वेद चतुष्टय द्वारा मानव को सर्गारम्भ में दी जाती है॥

बहुत से विद्वानों का विचार है कि अथर्ववेद ऋगादि तीन वेदों के बाद बना है। उन के पास दो युक्तियां हैं। एक तो यह कि अनेक स्थलों पर त्रयो विद्या का और ऋग् यजुः साम ही के नाम आते हैं। दूसरी यह कि अथर्ववेद नाम अथर्ववेद के सिवा अन्य तीनों वेदों में नहीं आता। सत्य यह है कि त्रयीविद्या से अभिप्राय 'तीन वेद'= (वेदत्रय) नहीं। 'त्रयीविद्या से क्या अभिप्रेत है यह ऊपर लिखा है। 'वेदचतुष्टय' में त्रयीविद्या है।

त्रयीविद्यामवेक्षेत वेदेषूक्तामथाङ्गतः।
ऋक्साम वर्णाक्षरतो यजुषोऽथर्वणस्तथा॥
महाभारत, शान्ति पर्व० २३५.१॥

"वेद में त्रयीविद्या देखे, सूक्तों को सांगोपांग देखे। 'ऋग् यजुः साम अथर्व' की वर्णाक्षरता देखे।" अर्थात् ऋग् यजुः साम और अथर्व में ही त्रयीविद्या है। यहां त्रयीविद्या के साथ वेदों के चारों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नाम भी दिये गये हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि 'त्रयीविद्या' 'वेद-चतुष्टय' का ही दूसरा नाम है।

चारों वेदों में तीन प्रकार के मन्त्र हैं, ऐसा जैमिनिमुनिकृत पूर्वमीमांसा दर्शन के (अ० २, पाद १. ३५-३६-३७ सूत्रों के अनुसार भी ज्ञात होता है। इसलिये 'वेदचतुष्टय का' समावेश रचना वृष्टि से तीन प्रकारों में होता है।

विनियोक्तव्यरूपश्च त्रिविधः सम्प्रदर्श्यते।
ऋग्यजुःसामरूपेण मन्त्रो वेदचतुष्टये ॥१॥
अहे बुध्नियमन्त्रं गोपायेत्यभिधीयते।

चतुर्ष्वपि हि वेदेषु त्रिधैव विनियुज्यते ॥२॥ सर्वानुक्रमणी वृत्ति की भूमिका (श्री षड्गुरु शिष्य कृत) ॥

"विनियोग किये जाने वाला मन्त्र-समुदाय वेद चतुष्टय में ऋग् यजुः साम रूप से त्रिविध है।" इस से ज्ञात होता है कि चारों वेदों को तीन विभागों में विभक्त करने का कारण मन्त्रों की रचना के तीन प्रकार और उन मन्त्रों में प्रतिपादित तीन (ज्ञान कर्म उपासना) विषय हो हैं।

यदि प्राचीन ग्रन्थों की दृष्टि में 'वेदत्रय' हो हैं, तो उन में कहीं पर भी 'वेदचतुष्ट' का वर्णन न होता।

१. अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहास·····" ॥ बृहदारण्यक उपनिषद्। (३.४.१०)

२. (क) स होवाच भगवोऽध्येमि ऋग्वेदं यजुर्वेदं सामवेद-माथर्वणं चतुर्थमिति·····॥

(ख) ऋग्वेदं विजानाति यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थम् ॥ छान्दोग्योपनिषद्—७.७.२ ॥

३. गोपथ ब्राह्मण। (टिप्पणी में देखिये)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

४. भेषजं वा अथर्वणानि ।। ताण्ड्यमहाब्राह्मण ।। १२.९.१० ।।

५. अथर्वशिरसि प्रोक्तैर्मन्त्रः·····।। वाल्मीकि रामायण बाल काण्ड ८.६ ।।

६. अथर्ववेदप्रवराः ·····।। महाभारत आदि पर्व अध्याय ६४.३३ ।।
राज्ञश्चाथर्ववेदेन सर्वकर्माणि कारयेत् ।।महा०शनिपर्व०७०.५०।।
वेदैश्चतुर्भिः सुप्रीताः·····।। महा० द्रोण पर्व० ५१ २२ ।।

७. चतुर्वेदविद्भिर्ब्रह्मभिर्ब्राह्मणैर्महर्षिभिः प्रोक्तानि
यानि वेदव्याख्यानानि तानि ब्राह्मणानीति ।। पतंजलि मुनिकृत महाभाष्य ५.१.१ ।।

८. ऋचो यजूंषि सामानि छन्दांस्यथर्वणानि च ।
चत्वारस्त्वखिला वेदा सरहस्यास्सविस्तराः ।। हरिवंश पुराण ।।

९. यो विद्याच्चतुरो वेदान् सांगोपनिषदो द्विज ।।
पद्म पुराण ५.२.५० ।।

१०. चतुष्पाद् यज्ञ का वर्णन करने वाले ग्रन्थों में चारों वेदों का वर्णन है। पीछे वर्णन कर आये हैं।

११. महाभारत को पंचम वेद कहा जाता है। यह सर्वमान्य है। पहिले यदि चार वेद हीं, तभी तो महाभारत को पंचम वेद कहा जा सकता है? यदि वेद तीन होते, तो इसका नाम 'चतुर्थवेद' होता उपनिषदों में इतिहास को पंचम वेद कहा है।

१२. कच्चिद्धर्मे त्रयीमूले। महा० सभा पर्व ५.१००। (नारद का वर्णन करते हुए)

१३. ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदश्च पाण्डव! ।। महा० सभा पर्व० ११.३१।। (नारद ही एक सभा का वर्णन करते हुए)

१४. अथर्ववेदश्च तथा सर्वशास्त्राणि चैव हि ।। महा० सभा पर्व० ११.३२।। पहिले (१२ वें प्रमाण में) नारद हो 'त्रयी' कहता है। यदि त्रयी का अर्थ 'चतुर्धा विभक्त वेदज्ञान' न होकर 'तीन वेद' ही होता, तो नारद-ऋषि है स्वयं ही आगे चार वेद न गिनाता?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१५. साचेद्धर्म कृता न स्यात् त्रयीधर्ममृते भुवि ॥
महा० वन पर्व० १५०.३२ ॥

१६. ऋग्वेदः सामवेद श्च यजुर्वेदोऽप्यथर्वणः ॥
महा०वन पर्व० १८७.१४॥

१७. यज्ञा वेदाश्च चत्वारः.....॥ महा० वनपर्व० २१५.२२॥

१८. अग्निहोत्रं त्रयीविद्या.....एषा त्रयो पुराणानाम् देवतानां च शाश्वती ॥ महा० आदि पर्व० १००.६७-६९ ॥ वैशम्पायन ऋषि का बचन ॥

१९. पाराशर्यो महायोगी स बभूव महानृषिः ।
कन्यापुत्रो मम पुरा द्वैपायन इति श्रुतः ॥ १४ ॥
यो व्यस्य वेदां श्चतुरस्तपसा भगवानृषिः ।
लोके व्यासत्वमापेदे काष्ण्यात्कृष्णत्वमेवच ॥१५॥ महा० आदि पर्व० १०५ अध्याय ॥ (यह सत्यवती का वचन है) ॥

२०. 'एसा त्रयी पुराणानाम्' । इस से तो स्पष्ट ही त्रयी का अर्थज्ञान प्रकट होता है ।

२१. भारतीय वाङ्मय में 'चार वेद' और उनके 'चार उपवेद' ऐसी प्रसिद्धि है । यदि वेद तीन होते, तो उपवेद भी तीन ही प्रसिद्ध होते ।

इन प्रमाणों से विदित होता है कि तीनों वेदों के साथ अथर्व की गणना समस्त प्राचीनतम साहित्य में है । इसीलिये त्रयीविद्या अथवा विशेष कारण वश केवल ऋग् यजुः और साम का ही नाम कहीं आ जाने से यह न समझना चाहिये कि अथर्व वेद तीनों वेदों के बाद बना है । यह वेद भी उतना ही प्राचीन है, जितने अन्य तीन हैं । उतना ही प्रामाणिक है, जितने अन्य तीन हैं । अतः इस की वेदता में कोई सन्देह नहीं है । जिन पाश्चात्य विद्वानों के मत में त्रयो शब्द से केवल ऋग् यजुः साम संहितायें ली जाती हैं और अथर्व अर्वाचीन मान लिया गया है, वे भ्रम में हैं । क्योंकि किसी भी प्रामाणिक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्राचीन ग्रन्थ से उनका समर्थन नहीं होता। यदि त्रयी का अथ 'त्रीन् वेदान्' हो होता, तो जैसे पीछे टिप्पणो पृ० में दिखाया है। एक ही ग्रन्थ 'त्रयी' के साथ 'वेदचतुष्टय' का उल्लेख न होता।

दूसरे वेद सब प्राचीन हैं जब उनमें—जैसा कि आगे विस्तार पूर्वक विचार होगा चारों वेदों का नाम लिखा मिलता है, उनके पश्चात् बने ग्रन्थों में (विशेषतः जो व्याख्यानरूप ब्राह्मण ग्रन्थ हैं तथा अर्वाचीन हैं) लिखे त्रयी शब्द से भ्रम में नहीं पड़ना चाहिये।

उनकी दूसरी युक्ति कि "इस चतुर्थ वेद का नाम अन्य वेदों में स्पष्टतः नहीं आने से यह अथर्व वेद अर्वाचीन है तथा यदि वेदों में है तो भो अथर्व नाम कम से कम ऋग्वेद में तो है नहीं। कहीं कहीं पर तीन वेदों का ही नामोल्लेख है" भी निस्सार है।

सबसे प्रथम यह देखते हैं कि अथर्ववेद' का यही नाम किन किन स्थलों पर आया है? यह अथर्व नाम तो अथर्व वेद के १०.७.२० स्कम्भ सूक्त में ही आया है। (अथर्वांगिरसो मुखम्) अन्य स्थलों पर नहीं। तो क्या यह वेद किन्ही अन्य नामों से वेदोंमें निर्दिष्ट है? हमारा मत है कि हाँ, वह कई अन्य नामों से निर्दिष्ट है,

ऋग्वेद में इस का नाम छन्दांसि तथा छन्द भी है। ऋग् ४.५८.३ में तथा १०.७१.११ इन दो मन्त्रों से यह तो स्पष्ट है कि ऋग् में भी चतुर्थ वेद की सत्ता को माना गया है। पुरुष सूक्त के तस्माद्यज्ञात् में छन्दांसि पद से चतुर्थ वेद का ग्रहण होता है। सायणाचार्य जी ने भी ऐसा ही माना है। गायत्री आदि छन्दों का ग्रहण प्रकरण प्रतिकूल होने से नहीं किया जा सकता। दूसरे यदि इन छन्दों से ही तात्पर्य होता तो वह तो ऋग् पद के कहने मात्र से ही गृहीत था, क्योंकि छन्दोमयी अर्थात् पादबद्ध रचना (पद्यमयी) को तो ऋग् कहते ही हैं। जब ऋग् मात्र कथन से ही छन्दांसि पद का भाव आ जाता है, तब छन्दांसि पद ग्रहण करना इसी बात का ज्ञापक है कि इस का अर्थ चौथा वेद अर्थात् अथर्व है। ऋग् यजुः

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

साम तो स्पष्ट वेद हैं ही, अतः अवशिष्ट का ग्रहण करना चाहिये। छन्द शब्द का अर्थ वेद भी होता है, जैसा कि पीछे सिद्ध कर चुके हैं।

छन्दोभ्यः समाहृत्य···। (निरुक्त १.१) वेदेभ्यः इति ॥
छन्दांसि यस्य पक्षौ इति श्रुतिः।
छन्दांसि यस्य पर्णानि ॥ गीता १५.१॥
व्याकरणे छन्दसि शब्दः वेदार्थकः ॥
छन्दोभिराच्छादयन्·····(छन्दो० ११.४.२) ॥

परन्तु जब ऋग् यजुः साम के साथ छन्दांसि पद आवे, तो वहां उस अकथित अथर्ववेद के मन्त्र समूह का ग्रहण ही करना चाहिये। इस मन्त्र में ऋग् साम के पश्चात् और यजुः पद से पूर्व छन्दांसि शब्द का प्रयोग है। इससे यह भी सूचित होता है कि 'वेदत्रय' की कल्पना गलत है।

अब हम चतुर्थ वेद की सत्ता के लिये कुछ और प्रमाण उद्धृत करते हैं :—

अथर्व वेद से स्कम्भ सूक्त में लिखा है कि—

यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजु र्मही ॥ अथर्व० १०:७.१४ ॥

"जिसमें ऋग् साम यजुः तथा मही आश्रित हैं·····वह स्कम्भ है।" तथा

यस्मादृचो अपातक्षन् यजु र्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमानि अथर्वाङ्गिरसो मुखम् ॥१०.७.२०॥

"जिससे ऋग् तथा यजुः निकले हैं पैदा हुए हैं; साम जिसका लोमस्थानीय है, तथा अथर्व जिसका मुख है···उसे स्कम्भ जानो ॥" यह स्कम्भ कौन है ? स्कम्भसूक्त के पढ़ने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि स्कम्भ परमेश्वर ही है। दूसरे, स्कम्भ सूक्त में लिखा है कि—

अस्य ब्रह्म मुखम् ॥ अथर्व १०.७.१६ ॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"जिसका मुख ब्रह्म है, वह स्कम्भ है" अर्थात् जो कि हमें ज्ञान देता है यह कल्पना ऐसा अर्थ करने पर ही संगत बैठती है। 'ब्रह्मा ब्रह्म दधातु' से ब्रह्म तथा ब्रह्मा दोनों का परस्पर सम्बन्ध ज्ञात होता है। ब्रह्मा स्कम्भ है।

ये तुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम्।
यो वेद परमेष्ठिनं यश्च वेद प्रजापतिम्॥
ज्येष्ठं ये ब्रह्माणं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः॥अथर्व० ११.३.१४॥

"इस मन्त्र के अनुसार ब्रह्मा, परमेष्ठी, प्रजापति, ज्येष्ठब्रह्मा तथा स्कम्भ ये सब एक ही सिद्ध होते हैं॥"

ऋचा कुम्म्यधिहितार्त्विजेन प्रेषिता॥ अथर्व० ११.३.१४॥
तथा ब्रह्मणा परि गृहीता साम्ना पर्यूढा॥ अथर्व० ११.३.१५॥

"अथर्व के ओदन सूक्त में भी ऋचा इज्य ब्रह्म तथा साम इस प्रकार चार का वर्णन है॥" यह ओदन कौन है? सूक्त वर्णन से यही ज्ञात है कि यह भी परमेश्वर का नाम ही है। दूसरे इस सूक्त के प्रथम मंत्र में लिखा है कि—तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम्।

"उस ओदन का सिर बृहस्पति तथा मुख ब्रह्म है।"

इसी प्रकार स्कम्भ सूक्त में लिखा है कि

यस्य शिरो वैश्वानरः॥ अथर्व० १०.७.१८॥
यस्य ब्रह्म मुखम्॥ अथर्व० १०.७.१९॥

"वैश्वानर जिसका शिर है तथा ब्रह्म जिसका मुख है।"

इससे दो बात ज्ञात होती हैं। प्रथम तो बृहस्पति तथा वैश्वानर की एकता और द्वितीय बात यह कि इस प्रकार वर्णन के एक समान होने से ओदन तथा स्कम्भ का अभेद।

ऋग् साम यजुरुच्छिष्ट उग्दीथः प्रस्तुत स्तुतम्॥
अथर्व० ११.७.५॥

"उच्छिष्ट सूक्त में ऋग् साम यजुः तथा उग्दीथ इन चार चीजों को बताया गया है। तथा—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुः यजुषा सह । उच्छिष्टा-
ज्जज्ञिरे ।। अथर्व० ११. ७।२४।।

"उच्छिष्ट से ही ऋग् यजुः साम तथा छन्द पैदा हुए हैं।" सूक्त के पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि यह उच्छिष्ट भी उसी परमेश्वर का नाम है।

इस ऋचा में प्रयुक्त 'पुराण' पद को देख कर बहुत से विद्वानों का मत है लोक में अत्यन्त प्रसिद्ध अष्टादश पुराण भी परमेश्वरोक्त या महान् भूत के निःश्वसित (बृहदा० ३.४.१० तथा शतपथ १४.६. १०,६ तथा छान्दो० ७.१.१) हैं।

पुराण शब्द का अर्थ है 'पुरापि नवम्' अर्थात् पुरातन होते हुए भी सनातन-नित्य नूतन। परमेश्वर का ज्ञान सर्गारम्भ में दिये जाने के कारण पुरातन है अर्थात् सर्ग के पुरा दिया गया है। तिर्दुष्ट होने के कारण तथा शाश्तीभ्यः समाभ्यः जनेभ्यः आवदन=प्रवचन होने के कारण नित्य नूतन है, प्रातः कालोन उषा के समान। इस लिये ईश्वरीय ज्ञान को "पुराण" कहा गया है। शतपथ १३.४.३.१३ में 'पुराणं' वेदाः ऐसा लिखा भी है।

एक सीधा तथा सरल अर्थ तो उच्छिष्ट का यह है कि परमेश्वर ने अपने पदार्थों में से जो हमारे निमित्त किये जाने वाले यज्ञ के लिये भाग छोड़ा है। परन्तु दूसरा इसका अर्थ स्कम्भ भी है। स्कम्भ सूक्त में आता है कि—

यत्र लोकांश्च कोशांश्च आपो असच्च यत्र सच्चान्तः
ऋतं च यत्र श्रद्धा च ।। अथर्व० १०.७.११।।

यत्राग्निचन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः ।। अथर्व० १०.७.१२।।तथा स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे स्कम्भो दाधारोर्वन्तरिक्षम् ।। अथर्व० १०.७.३५।।

"जिसमें सब लोक कोश आप···असत् तथा सत्, ऋत और श्रद्धा हैं। जिसमें भूमि, अन्तरिक्ष, द्यौ, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य तथा वात

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्पित हैं। स्कम्भ ने ही द्यावापृथिवी तथा अन्तरिक्ष को धारण किया हुआ है।" जब हम इस वर्णन को उच्छिष्ट सूक्त के—

[उच्छिष्टे लोक आहितः। उच्छिष्ट इन्द्रचाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम् ॥ अथर्व० ११.७.१॥
उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम्। आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहिताः ॥ अथर्व० १०.७.२॥
सन्नुच्छिष्टे असंश्चोभौ ॥ अथर्व० १०.७.३॥
ऋतं सत्यम्ा अथर्व० १०.७.१७॥

"उच्छिष्ट में ही सम्पूर्ण लोक, इन्द्र, अग्नि, द्यावापृथिवी, आपः चन्द्रमा, वातः, सत् तथा असत् और ऋत तथा सत्य है।"] इस वर्णन से मिलाते हैं तो स्पष्ट ही दोनों की एकता का पता चल जाता है ऊपर ओदन तथा स्कम्भ की एकता का प्रतिपादन किया जा चुका है। इस प्रकार ये तीनों एक ही परमेश्वर के बोधक हैं॥

यत्राऽमृतं च मृत्युश्च पुरुषे ऽधि समाहिते। समुद्रो यस्य नाड्यः पुरुषे ऽधि समाहिताः।स्कम्भ तं ब्रूहि कतमः स्विदेवसः ॥
अथर्व० १०.७.७५॥

यहां स्कम्भ को पुरुष कहा गया है। और यह पुरुष परमेश्वर ही है।

इस उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि परमपुरुष यज्ञ परमेश्वर ने "चार वाक् समूहों में सृष्टि के आदि में वेद का ज्ञान दिया है।" इस बात को निम्न कोष्ठ से भली भांति समझ सकते हैं।

१. स्कम्भ सूक्त में—

ऋग्। साम। यजुः। मही। (१५ वें मन्त्र के अनुसार)
ऋग्। साम। यजुः। अथर्व। (२० वें मन्त्र के अनुसार)

२. ओदन सूक्त में—

ऋग्, साम, इज्य, तथा ब्रह्म।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

३. उच्छिष्ट सूक्त में—

ऋग्, साम, यजुः, उद्गीथ। (५ वें मन्त्र के अनुसार)
ऋग्, साम, यजुः छन्दांसि (२४ वें मन्त्र के अनुसार)

इस कोष्ठ से यह स्पष्ट है कि ऋग् तथा साम तो सब में समान हैं। यजुः भी सर्वत्र लगभग इसी नाम से वर्णित है; यद्यपि एक स्थान पर उसे इज्य भी कहा गया है। चौथे भाग को ब्रह्म उद्गीथ छन्द मही तथा अथर्व इन भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है (ह्विटनी ने भी ब्रह्म को अथर्ववेद माना है) ये ऋग् यजुः साम अथर्व नाम से प्रसिद्ध चारों वेद उसी उच्छिष्ट, स्कम्भ तथा ओदन रूप यज्ञ पुरुष परमेश्वर से उत्पन्न किये गये हैं। इस प्रकार उत्तरोत्तर विचार करते हुए हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि—परमेश्वर की एक छन्दोमयी वाणी है। उसे काव्य भी कहा जाता है। वह वाक् चार भागों में विभक्त है। उन चारों के नाम क्रमशः ऋग्, यजुः, साम तथा अथर्व हैं। उस ज्ञान को परमेश्वर ने सर्गादि में ऋषियों के हृदय में स्थापित किया और उन्होंने साधारण मनुष्यों तक उसे पहुंचाया। जैसे—

१. अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शन्तमः।
अथा सोमं सुतं पिब॥ ऋ० १.१६.७॥

"यह सब से पहिला स्तुति समूह=वेदज्ञान हृदय को स्पर्श करने वाला तथा शान्ति दायक होवे। वेदज्ञान प्राप्त कर के उत्पन्न ऐश्वर्य को भोगो।"

इस मन्त्र में 'स्तोम' को स्पष्ट सी 'अग्रियः' सर्गादि में दिया तथा 'हृदिस्पृग्' जो हृदय को स्पर्श करने वाला है, हृदय में उतरने वाला कहा है। 'अग्रियः स्तोमः' वेद संसार में सब से पुराना ग्रन्थ है। वेद सब वाणियों का मूल है, सब से पहिले वेद ही मनुष्य को प्राप्त हुआ वेद द्वारा ही वाणी तथा ज्ञान संसार में फैले……।

२.—ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतुस्त्रीष पवित्रा हृद्यन्तरादधे॥
ऋ० ९.७३.८॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"जो परमेश्वर (ऋतस्य गोपाः) सत्य ज्ञान का रक्षक है। (सुक्रतुः) उत्तम कर्म और ज्ञान वाला है। (सः) वह (त्रीः पवित्राः) पवित्र करने वाली जिस त्रयी विद्या को सर्गादि में (हृदि अन्तः आ दधे) हृदय में धारण कराता है। वह विद्या (न दभाय) किसी को पीड़ा देने या छलने के लिये नहीं है।" इसमें स्पष्ट ही उस वाणी को 'हृदय के अन्दर धारण कराया' ऐसा लिखा है। इस में 'न दभाय' शब्द एक अन्य अत्यन्त महत्वपूर्ण बात बताता है। वेद सब के लाभ, स्वस्ति, शान्ति, अभय के लिये हैं और किसी को भी 'पीड़ा देने दलने' के लिये नहीं। ऐसी दशा में वेदों के नाम पर जात पांत मान कर एक विशेष वर्ग का पददलन सर्वदा घृणित और अवैदिक है।

इन्हीं चार भागों का वर्णन यजुः १२.४ के 'स्तोम (ऋग्) आत्मा छन्दास्यङ्गानि यजूंषि नाम। साम ते तनूः' इस मन्त्र में आया है। निम्न स्थलों में भी चार भागों का वर्णन है। अर्थ न कर केवल उद्धरण ही दे देते हैं। अथर्व० १५.३.६-७ तथा अथर्व० ९.६.१॥ इस बात को अधिक पुष्ट करने के लिये एक और स्पष्ट प्रमाण देते हैं जो कि साधारणतः प्रत्येक वेद का विद्यार्थी वेद पढ़ना प्रारम्भ करते समय गुरुमुख से अवश्य सुन लेता है।

पुरुष सूक्त में पुरुष का वाची यज्ञ नाम दिया गया है—

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः। तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च॥ —ऋ० १०.९०.७ तथा यजु० ३१.९

तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रशः। तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये॥ —अथर्व० १९.६.११

यज्ञ शब्द के पुरुष (अर्थात् परमेश्वर) और लौकिक यज्ञ ये दोनों अर्थ होते हैं। इसी भेद को 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः' इस मन्त्र भाग से प्रतिपादित किया है। उस यज्ञ रूप परमेश्वर से वेद उत्पन्न हुए है, यह बात निम्न (लगभग एक जैसे ही) मन्त्रों में प्रतिपादित की गई है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे ॥
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥ यजु० ३१.७ ॥
ऋग् १०.९०.९ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दोह जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥ अथर्व० १९.६.१३ ॥

"उस यज्ञ स्वरूप सब का उत्पादन तथा प्रलय करने वाले (सर्वहुतः-हुदानादनयोः) परमात्मा से ऋग्, साम, यजुः तथा छन्द अर्थात् अथर्ववेद पैदा हुए हैं।" यहां स्पष्ट है। सृष्टि उत्पत्ति का वर्णन है। यदि यज्ञ का सम्बन्ध इन वेदों की उत्पत्ति से बताया है, तो साथ ही साथ सृष्टि उत्पत्ति का सम्बन्ध भी उस यज्ञ से है—

ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ॥ यजु० ३१.४॥
ततो विराडजायत विराजो अधिपूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥ यजु० ३१.५॥

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूंस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ यजु०३१.६ ॥
तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः ॥ यजु० ३१.७
तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ यजु० ३१.८॥

अभिप्राय यही हुआ कि प्रजापति ने सृष्टि यज्ञ करते समय इसका भी आविर्भाव किया। अर्थात् संसार जब बन रहा था उस समय वेद भी प्रकाशित किये। उसी को कहा कि मानों यज्ञ से चारों वेद प्रगट हुए हैं अर्थात् वेद-वाक् सृष्टि के आरम्भ में प्रगट हुई। इससे स्पष्ट है कि केवल अथर्व वेद में ही नहीं प्रत्युत अन्य वेदों में भी चतुर्थ वेद अर्थात् अथर्ववेद का वर्णन है।

विश्वेभ्यो हित्वा भुवनेभ्यस्परि त्वष्टाजनत् साम्नः साम्नः कविः ।
स ऋणचिदृणया ब्रह्मणस्पतिः ब्रह्मो हन्ता मह ऋतस्य धर्तरि ॥
ऋ० २.२३.१७॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"त्वष्टा जो कि सामों को गाने वाला कविः है, उसने ब्रह्मणस्पति को सामों में से बनाया है।" इसका अभिप्राय यह है कि त्वष्टा वे सामों तथा ब्रह्मणस्पतिः=ज्ञान के स्वामी को बनाया है अर्थात् ज्ञान को उत्पन्न किया है। यजु० में लिखा है कि 'त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान' अभिप्राय यह है कि संसार को उत्पत्ति के समय त्वष्टा उसे घड़ते समय जो संगीत कर रहा था, वही संगीत ही तो वेद है; जिससे कि हम उसके कर्ता ब्रह्मणस्पति के विषय में जान सकते हैं। यजु० ८.४.५. में भी 'वाचस्पति विश्वकर्माणम्'.....इसी मत को पुष्ट किया है। अथर्व० ४.२३.१ में 'प्रथमस्य प्रचेतसः' कहने का भी यही अभिप्राय है कि प्रथम अर्थात् सृष्टि निर्माण के समय जो पहिला ज्ञानी उसका.....।'

परिद्यावापृथिवी सद्य आयमुपातिष्ठे प्रथमजामृतस्य।
वाचमिव वक्तरि भुवनेष्ठा धास्युरेष नन्वेषो अग्निः॥
अथर्व० २. १.४॥

उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि संविवेश॥
यजु० ३२.११॥

"इन उक्त दोनों मन्त्रों में स्पष्ट ही वेद को सर्वप्रथम उत्पन्न वाणी अर्थात् ज्ञान कहा है। अथर्व ९.१०.१५ में भी यही मत माना गया है।

यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक्.....॥ ऋ० १०.११४.८॥

इस मन्त्र में वेदवाणी को नित्य भी कहा है—"जब तक ब्रह्म-स्थित रहता है, तभी तक उसकी वाणी भी.....।" जितना महान् वह परमेश्वर का (जगन्मय प्रकट स्वरूप) है, उतनी ही वाणी भी विस्तृत है।

तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूपनित्यया॥ ऋ० ८.७५.६॥

इस मन्त्र में वाणी को नित्य कहा गया है। "हे नाना रूप अर्थात्

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गुणकार्य स्वभाव वाले जीव। तू निश्चय से उस तेजस्वी परमेश्वर के लिये स्तुतियें नित्य=नितरां सत्य वाणी का प्रयोग कर ॥"

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥ महाभारत, आदि पर्व० १२.२३.२४॥

"सृष्टि के प्रारम्भ में स्वयम्भू परमात्मा से ऐसी 'वेदमयी' वाणी का आविर्भाव किया गया, जो नित्य है, जिसका कभी नाश नहीं होता, जो दिव्य है, जिससे संसार में सब प्रवृत्तियां चलती हैं।"

मन्त्रों गुरुः ॥ ऋ० १.१४७.४॥ यहां वेद वाणी को 'गुरु' कहा गया है। मन्त्रेभिः सत्यैः ॥ ऋ० १.६७.३ ॥ इसमें वाणी को 'सत्य' बतलाया है ।

सत्यो मन्त्र ॥ ऋ० १.१५२.२=इसमें इसको 'सच्चा मन्त्र' कहा है तमिद्वोचे सा विदथेषु शम्भुवं मन्त्रं देवा अनेहसम ॥ ऋ० १.४०.६॥

"देवों ! (विदथेषु) लोक व्यवहार रूप यज्ञ में (तम् इत् मन्त्रम् वोचेम) हम उस मन्त्र को ही कहें, जो सुख देने वाला तथा पाप रहित अर्थात् पाप से बचाने वाला व निर्दोष होता है।" वेद के अनुसार मनुष्य को वेदों की आज्ञानुसार आचरण करना चाहिये। वहां लिखा है—

नकिर्देवा मिनीमसी न किरायोपयामसि मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ॥
ऋ० १०.१३४.७॥

"हे विद्वानों न हम विरुद्ध [उलटा सीधा] करते हैं और न धोखा देते हैं; किन्तु जैसा मन्त्रों में बतलाया हैं, वैसा आचरण करते हैं। अर्थात् वेदों ने मनुष्यों को उन्हीं मन्त्रों के अनुसार आचरण व्यवहार करने की शिक्षा दी है और स्पष्ट कह दिया है कि इसके विरुद्ध आचरण करना नहीं चाहिये। आगे ऐसा ही एक और मन्त्र प्रस्तुत करते हैं—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ब्रह्मणस्पते त्वामस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तन्वं च जिन्वा
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥
यजु० ३४.५८॥

हे दयानिधे ! चित्स्वरूप ! वेदाधियन्ता परमेश्वर ! तू ही इस (सूक्तस्य) उत्तम उपदेश=कल्याणी वाक् क्षेमकारी वचन का (यन्ता) नियामक=नियम पूर्वक प्रदाता या आदि प्रेरक है। तू ही (बोधि) सर्गादि में जानता और [वेद का] बोध कराता है। और फिर (तनयम्) मानव सन्तति को (जिन्व) प्रसन्न और तृप्त करता है। जिसको विद्वान् (अवन्ति) पसन्द करते हैं इस सम्पूर्ण भद्र को=हृदय में प्रविष्ट होने वाली भयद्रावक ज्ञान को (=सकल भद्र को) हम उत्तम वीर (विदथे) ज्ञान यज्ञ में=संसार वेदी पर अध्ययनाध्यापन द्वारा (बृहद्वदेम) आगे बढ़ कर कहें॥

आगे उन ऋषियों के नाम लिखते हैं, जिनको प्रत्येक सर्ग के आरम्भ में वेदों का ज्ञान दिया जाता है। यह ऐतिहासिक विशेष व्यक्ति नहीं होते, अपितु उनके ये नाम गौणिक होते हैं।

यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनय चारुमग्नये॥
ऋ० १०.९१.१४॥

(यस्मिन्) जिस जगत् में, (अश्वासः) वाहकपशु अश्व आदि (ऋषभासः) तेज गति वाले पशु विशेष, (उक्षणः) बैल (वशाः) गौएं और (मेषाः) भेड़ बकरे आदि (अवसृष्टासः) उत्पन्न किये हुए। [मुझ परमात्मा द्वारा मनुष्य के लिये दान किये जाते हैं [उसी जगत् में तदर्थ मैं परमात्मा] (अग्नये) अग्नि (कीलालपे) वायु (सोमपृष्ठाय) आदित्य (वेधसे) अङ्गिरा (हृदा) ऋषियों के हृदय में (चारुं मतिम्) प्रशंसनीय वेद को (जनये) प्रगट करता हूं।

यदि हम ऊपर प्रतिपादित तथा विवक्त विषय को उपसंहार रूप में कहें, तो कह सकते हैं कि—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात् ।।" यजु० ४०.८ ।। अथर्व० ५.१२.१ ।। अथर्व० ५.११.४ ।। ऋ० १०.११.३ ।। ऋ० ७.४.४ ।।

"पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति ।।" अथर्व० १०.८.३२।।

"यत्र ब्रह्मा पवमानः छन्दस्यां वाचं वदन्" ।। ऋ० ९.११३.३।।

"छन्द्यं वचः।" । साम० पूर्वा ३.७.३ ।।

"चत्वारि शृङ्गा" ।।ऋ० ४.५८.३ ।।

"यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् ।।

सामानि यस्य लोमानि अथवाङ्गिरसो मुखम् ।।" अथर्व० १०.७.२० ।। तथा अथर्व० १०.७.१४ ।। अथर्व० १४.३.१४,१५ ।। अथर्व० ११.७.५ ।। अथर्व० ११.७.१० ।। यजु० १२.४ ।। अथर्व० १५.३.६,७ ।। अथर्व० ९.६.१ ।। यजु० ३१.७ ।। ऋ० १०.९०.९ ।। अथर्व० १९.६.१३ ।।

"प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्रदेव्येतु सूनृता ।।" ऋ० १.४० १३ ।।

"प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिः मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् ।।" ऋ० १.४०.५ ।।

"यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम् । तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा ।।" ऋ० १०.७१.४ ।।

"बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत् प्रैरत नामधेयं दधानाः ।
प्रेणा तदेषां निहितं गुहा विः ।।" ऋ० १०.७१.१ ।.

"अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शन्तमः ।।" ऋ० १.१६.७।।

"हृद्यन्तरादधे ।।" ऋ० ९.७३.८ ।।

"यथेमां वाचं कल्याणीमा वदानि जनेभ्यः ।।" यजु० २६.२ ।।

"यथाभर्गस्वतीं वाचमावदानि जनां अनु ।।" अथर्व० ९.६९.२ ।।

"मन्त्रो गुरुः" ।। ऋ० १.१.४७ ।। "मन्त्रेभिः सत्यैः" ।। ऋ० १.६७.३ ।। "सत्यो मन्त्रः ।।" ऋ० १.१५२.२ ।।
सत्यो ज्ञानमयो हि सः ।।" मनु० ।।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"तमिद्वोचेमा विदथेषु शम्भुवं मन्त्रं देवा अनेहसम् ॥"
ऋ० १.४०.६ ॥

"मन्त्रश्रुत्यं चरामसि" ऋ० १०.१३४.७ ॥

उस कवि तथा मनीषी ब्रह्मा सृष्टि कर्त्ता परमात्मा का एक छोन्दोमय काव्य है। उसमें 'त्रयीविद्या' है। वह ऋग् यजुः साम तथा अथर्व इन चार भागों में विभक्त है। इस कल्याणी वाणी को ब्रह्मा यज्ञ वृहस्पति वाचस्पति आदि नामों वाले ज्येष्ठ पुरुष ने जन कल्याणार्थ सृष्टि निर्माण करते समय इसे प्राप्त करने की क्षमता रखने वाले अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा चार देवों=विद्वान् ऋषियों के हृदय में स्थापित किया और उन्होंने सम्पूर्ण विश्व के प्राणियों के लिये सुना दिया। यही गुरु वाणी है, सत्य सनातन ज्ञान है। आओ भाईयो! उसी सुख देने वाले पाप रहित मन्त्र को कहें; तथा जैसा मन्त्रों में कहा है वैसा आचरण करें ॥"

"जैसे अपने सन्तानों के ऊपर पिता और माता सदैव करुणा को धारण करते हैं सब प्रकार से हमारे पुत्र सुख पावें, वैसे ईश्वर भी सब मनुष्यादि सृष्टि पर कृपा-दृष्टि सदैव रखता है, इस से ही वेदों का उपदेश हम मनुष्यों के लिये किया है।

जैसे परम कृपालु ईश्वर ने प्रजा के सुख के लिये कन्द, मूल, फल और घास आदि छोटे-छोटे भी पदार्थ रचे हैं, सो ही ईश्वर सब सुखों के प्रकाश करने वाली, सब सत्य-विद्याओं से युक्त वेदविद्या का उपदेश भी प्रजा के सुख के लिये क्यों न करता ?। (ऋ. भाष्यभूमिका)

"जैसे माता-पिता अपने सन्तानों पर कृपा दृष्टि कर उन्नति चाहते हैं वैसे ही परमात्मा ने सब मनुष्यों पर कृपा करके वेदों को प्रकाशित किया है जिससे मनुष्य अविद्यान्धकार भ्रमजाल से छूट कर विद्या विज्ञानरूप सूर्य को प्राप्त होकर अत्यानन्द में रहें और विद्या तथा सुखों की वृद्धि करते जायें।" —(सत्यार्थप्रकाश)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परिशिष्ट भाग

[विद्वानों के विचारार्थ ५ परिशिष्ट दिये जाते हैं]

१—चार वेदों की सत्वरचना

(यह विषय श्री पं० सातवलेकर जी की "वैदिकधर्म की विशेषता" पुस्तक के आधार पर लिखा गया है।

इस प्रकार वेदों की अन्तःसाक्षी से चारों वेदों की सत्ता सिद्ध हो जाने के उपरान्त, "प्रत्येक वेद में कौनसा विशेष सत्व है, जो एक को दूसरे से पृथक् करता है तथा जिसके कारण उस वेद का विशेष महत्व स्थापित होता है और प्रत्येक वेद के विशेष सत्व का परस्पर सम्बन्ध किस प्रकार का है, इसका विचार व समालोचन वेदों के आधार पर अत्यन्त आवश्यक है।"

"वास्तव में चारों वेद मिलकर एक ही 'वेदराशि' (वेद संहिता) है। यही पुराणों का चतुष्पाद् एक वेद है। जिस प्रकार सिर, हाथ पेट और पांव सब मिलकर एक शरीर होता है; किंवा आत्मा, बुद्धि मन और स्थूल शरीर मिलकर एक पुरुष होता है, उसी प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद मिलकर एक 'वेद' होता है। इस प्रकार चार वेदों में ज्ञानदृष्टि से एकता निःसन्देह है। परन्तु जैसे शरीर में प्रत्येक अंग व पुरुष में प्रत्येक अन्तःकरण की अपनी पृथक् विशेषता है; वैसे ही प्रत्येक वेद में अपनी एक सत्वरूप विशेषता है; जिसके कारण प्रत्येक वेद का अन्य वेदों की अपेक्षा स्वतन्त्र अस्तित्व सिद्ध होता है।"

"यद्यपि सब शरीर अस्थि चर्म मज्जा मांस रुधिर आदि सप्त-धातु पदार्थों का बना है, तथापि एक अंग (आंख) की विशेषता दूसरे अंग (नाक) में नहीं और इस नाक की विशेषता तीसरे अंग

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(कान) में नहीं है। ऐसा अनुभव में होना ही प्रत्येक अवयव के स्वतन्त्र अस्तित्व की सफलता व सुफलता का साधक हेतु है। किसी भी एक अवयव के अपना कार्य करने में असमर्थ व जीर्ण होने पर जिस प्रकार सारे शरीर पर विपत्ति आती है; उसी प्रकार किसी भी एक वेद का मनुष्यों में अज्ञान होने से मानवो उन्नति में निःसन्देह बाधा उत्पन्न हो सकती है।" इसलिये सम्पूर्ण वेद का ज्ञान आवश्यक है।

"मनुष्य में चार बातें मुख्य हैं, बुद्धि, प्राण, मन और वाक्। बाह्य इन्द्रियदशक में मनुष्यत्व को विशेषता वागिन्द्रिय से सिद्ध होती है। इस इन्द्रिय के अभाव में अर्थात् वाक्शक्ति के अभाव से मनुष्य की पशुपक्षियों से समानता सिद्ध हो जातो है। अन्तरिन्द्रियों में मन की प्रधानता है, सारासर विचार शुभाशुभ विवेक सत्यासत्यज्ञान पाप-पुण्य का भेद धर्माधर्म की आलोचना और अच्छे बुरे का सोच विचार करना आदि सब मननात्मक कार्य इसी मन के कारण हो रहा है। इसके साथ सब जीवन की आधार रूप प्राणशक्ति है; जिसके रहने और न रहने से मनुष्य का जीवन और मरण है। इसके ऊपर आत्मा की निजशक्ति, जो बुद्धिरूप से (विज्ञानमय आत्मा) प्रसिद्ध है, विराजमान है; यह शक्ति आत्मा के साथ सतत रहतो है और इसका आत्मा के साथ कभी वियोग नहीं होता। यद्यपि मनुष्य में अन्य भी बहुत सी शक्तियाँ हो सकतो हैं, तथापि ये चार प्रमुख हैं और इनको अध्यक्षता के नोचे अन्य शक्तियाँ अपना अपना कार्य करती हैं, इस-लिये इनके ग्रहण करने से अन्य शक्तियों का स्वयं अन्तर्भाव हो जाता है।"

"सामान्यतः हस्तपादादि कर्मेन्द्रियाँ पशुपक्षियों के समान ही मनुष्य में हैं। ज्ञानेन्द्रियां भी यद्यपि मनुष्य व मनुष्येतर प्राणियों में शारीरिक रचना को दृष्टि से समान हैं, तथापि इनके व्यवहार करने में दोनों में स्पष्ट भेद है। यद्यपि बुद्धि, प्राण, मन व वाणो ये चार शक्तियां पशुपक्षियों में भो अत्यन्तसूक्ष्म रूप से विद्यमान हैं, तथापि जिस प्रकार मनुष्य ही इनसे कार्य ले सकता है और व्यक्ति व समु-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दाय में इनके द्वारा सामंजस्य व दोनों की उन्नति कर सकता है, उस प्रकार कोई अन्य प्राणी नहीं कर सकता। इसलिये ये चार शक्तियां मनुष्य में ही विशेष प्रकार से रखीं गई हैं।

पशुपक्षीकृमिकीटादि चिल्ला सकते हैं, रो सकते हैं, ध्वनि कर सकते हैं; पर इच्छानुसार भाषण नहीं दे सकते, बोल नहीं सकते, इष्टागोष्ठी नहीं कर सकते। मयूर केकावाणी का ही नाद करेगा, पर मनुष्य सप्तस्वरों में आलाप कर सकता है। कोकिल जीवन पर पीऊ पीऊ और बिल्ली म्यांऊ माँऊ ही करती रहेगी पर बाल्मीकि 'अत्र ध्रियतां धनं' के स्थान पर 'मा निषाद प्रतिष्ठा···' भी कह सकता है। यह है 'वाणी' की विशेषता।

पशुपक्षीकृमिकीटादि मनन नहीं करते। अच्छे बुरे का जितना जीवन के लिये सहजध्यान आवश्यक है, उससे ज्यादा 'मंनन' करके 'मन्त्र' (साइंस फार्मूले) बना देने की शक्ति उनमें नहीं। वाणी का न होना ही यह सिद्ध करता है कि उनके अन्दर मनन संकल्प विकल्प नहीं है। यह है मनन की विशेषता।

पशुपक्षीकृमिकीटादि में प्राण संचार वैसे ही है, जैसे कि मनुष्य में। परन्तु मनुष्य प्राणों को अपने वश में प्राणायाम द्वारा कर सकता है, श्वासप्रश्वास की मात्रा व समय को घटा बढ़ा कर अपने को अल्पायु या दीर्घायु बना सकता है। यह है मनुष्य में प्राण की विशेषता।

पशुपक्षीकृमिकीटादि की शरीर रचना में मस्तिष्क अवश्य है, पर उसमें 'बुद्धि' नहीं है। ज्ञान और अनुभूति ये दोनों मनुष्य में विशेष हैं। इसके साथ हृदय भी है। यह भी पशु में है, उसके हृदय में भी रक्तसंचार होता है; परन्तु वहाँ अनुभूति या स्नेह रस नहीं। धड़कन वहां भी होती है, पर मनुष्य के हृदय की धड़कनें निःस्तब्ध नहीं होती, मधुर रसमयी सजीव होती है। यह भी बुद्धि के साथ ही है। ज्ञान और अनुभूति एक ही बुद्धि की आन्तरिक और बाह्य चेतनायें हैं। इस प्रकार यह है मनुष्य में बुद्धि की विशेषता।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"ऐसा कहा जाता है, इन चार शक्तियों के साथ चार वेदों का सम्बन्ध वेद ने ही स्वयं जोड़ा है। यजुर्वेद अ० ३६ के प्रथम मन्त्र में निम्न प्रकार से इन चारों शक्तियों के साथ चारों वेदों की शरण लेने की सूचना है :—

(१) ऋचं वाचं प्रपद्ये—मैं वाणी को लेकर ऋग्वेद की शरण लेता हूँ।

(२) मनो यजुः प्रपद्ये—मैं मन को लेकर यजुर्वेद की शरण लेता हूँ।

(३) साम प्राणं प्रपद्ये—मैं प्राण को लेकर सामवेद की शरण लेता हूँ।

(४) चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये—मैं श्रवणशक्ति को लेकर अथर्ववेद की शरण लेता हूं।

"इस मंत्र का थोड़ा सा विचार करने से चारों वेदों के सत्व की रचना भी स्वयं ज्ञात हो सकती है।"

(१) ऋग्वेद वाणी की शुद्धि करने वाला है, इसलिये इसके मन्त्र समुदाय का नाम सूक्त होता है। (सु) उत्तम (उक्त) कथन, सु+उक्त=सूक्त अर्थात् उत्तम कथन उत्तम विचार सुविचार सुभाषित होलीथौट, पवित्रादेश के समुदाय संग्रह का नाम ऋग्वेद है। सुविचारों से वाणी की शुद्धता होती है। कु विचार के भाव दूर करने और सुविचार के भाव को ग्रहण करने का सब से महत्वपूर्ण कर्त्तव्य ऋग्वेद कर रहा है; क्योंकि मनुष्यों के विचारों और वाणी की शुद्धि इस से होती है।

(२) यजुर्वेद मन की शुद्धि करने वाला है। यजुर्वेद के मन्त्र समुदाय का नाम अध्याय होता है। अधि+इण् या अय गतौ। गतेस्त्रयोऽर्था ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्च। अध्याय अध्ययन, अभ्यास, पुनः पुनरालोचन, स्टडी मन के द्वारा होता है। यह मन जागृति दशा में सदैव किसी न किसी चिन्तनात्मक कार्य में लगा रहता है। यज्ञमय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कार्य और यज्ञमयी जीवन रूपी खादपानी से इस में संकल्प-विकल्प के हरे-हरे पत्तों की सजीवता और सत्यासत्यविवेक के सुन्दर फूलों की सुगन्धि आती है। इसलिये इसको इष्टतमे कर्मणि संयुक्त कर के शुद्ध (सजीव सुगन्धित) करना यजुर्वेद का कर्त्तव्य है। पवित्र कर्मों से मन को पवित्र बनाना यजुर्वेद से होता है। यह यजन का वेद है। मनुष्य के सामने का वातावरण जैसा अच्छा होगा उसके मन पर वैसे ही संस्कार पड़ने से उसका मनन (संकल्प विकल्प+सत्यासत्य व शुभाशुभविवेक) उतना ही अच्छा होगा। यह उत्तम वातावरण अच्छे कर्मों से=उत्तम यज्ञों से बनता है, जिनका प्रदर्शन यजुर्वेद करता है।

(३) सामवेद प्राण की शक्ति को बढ़ाता है। पूर्वोक्त मन जो जागरित अवस्था में संकल्प-विकल्पों तर्क-कुतर्क-वितर्कों में लगा रहता है, उसकी शुद्धि प्रशस्त कर्मों में मग्न होने से यजुर्वेद द्वारा हो गई। इससे मनुष्य में विलक्षण सामर्थ्य उत्पन्न होता है और इससे उसमें जीवन संचार होता है; उसका प्राण मानवीय सामर्थ्य में मावनीय प्रयत्न में सूक्ष्मता तीव्रता, उत्साह पैदा करता है। इसकी पवित्रता उपासना द्वारा होती है, जो सामवेद का कार्य है। जिन मनुष्यों का मन चंचल होता है जिसमें उलटे सीधे विचार बुद्बुद उठते रहते हैं, उन का प्राण भी चंचल रहता है—श्वासप्रश्वास अस्थिर विकृत रहते हैं। वह आराम से बैठ नहीं सकता। एक आसन पर कुछ समय भी बैठ न सकना यह प्राणों की चंचलता के हेतु से होता है। उस समय 'उपासना' इधर-उधर न भटक कर 'समीप बैठना'—अन्तः प्रवृत्त होना, अपनी प्रवृत्तियों को अन्तर्मुख करना, अपने प्राणों को अन्तर्जीवन की ओर (=सूक्ष्म शरीर के विकास में) लगाना सच्ची उपासना है। उस समय चंचलता हलचल आन्दोलन अस्थिरता नष्ट होकर मन और प्राण की एकतानता हो जाती है—यही शान्तिमय स्थिति है। जब वह सब कुछ करता हुआ सा भी नहीं करता, देखता भी नहीं देखता। उसके मन पर वाह्य जगत् का प्रभाव नहीं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पड़ता। साम वेद के मंत्र समुदाय को 'सम्मन्' कहते हैं, जिसका तात्पर्य चित्तवृत्ति की शान्ति से है।

(४) अथर्ववेद शुद्ध ज्ञान द्वारा बुद्धि की शुद्धि करता है और आत्मा पर पड़े अविद्या या माया के आवरण को हटाता है। अ+थर्व अर्थात् सब प्रकार की गतियों प्रवृत्तियों का पूर्णनिषेध। जो प्रवृत्तियाँ उसे जन्म-मरण के चक्र की कड़ी बनाती हैं, उनका निरोध। इन्द्रियाँ, मन, प्राण सब अपना व्यापार करते हैं, पर उन पर वासना की मुद्रा अंकित नहीं होती। ये सब शीशे की तरह हो जाती हैं जब तक वस्तु व घटना इनके सामने रहती है, इनमें प्रतिबिम्ब पड़ता है, पर उसमें लगता नहीं, कागज पर प्रिण्ट होने की तरह छप नहीं जाता। यह दशा उत्तम श्रवण से होती है। जैसे घाव धोने के लिये पिचकारी से निरन्तर पानी की धार पड़ना जरूरी है, जैसे दाल धोने के लिये बार-बार पानी डालना पड़ता है वैसे ही जो बार-बार निरन्तर उत्तम उपदेश सुनते रहते हैं, उन के अन्तर्मल श्रवणधार से विनष्ट हो जाते हैं। उस समय सफेदी हटी आंख से पुनः दिखने लगता है, मानों उसकी आंख खुल जाती है। यही श्रवण द्वारा चक्षु की शरण में जाना है। श्रवण इन्द्रिय के द्वारा-आप्त विद्वानों की वाणी, सन्तों के उपदेश बुद्धि के अन्दर प्रविष्ट होता है और उसकी पवित्रता करता है। इस अथर्ववेद के मंत्रसमुदाय का नाम 'ब्रह्म' होता है, इस लिये अथर्ववेद को 'ब्रह्मवेद' भी कहते हैं। ब्रह्म=ज्ञान ही मनुष्य की चक्षु है, इसलिये ब्रह्मवेद चक्षु कहलाता है। जो अपनी बुद्धि रूपी आंख खोलना चाहते हैं अपनी दृष्टि को विशाल करने के इच्छुक हैं उन्हें अपने कानों के पर्दों को खोल देना चाहिये।

"मनुष्य मात्र की वैयक्तिक और सामाजिक उन्नति के लिये इन चार वेदों के इन चार सत्वरूप कार्यों की अत्यन्त अनिवार्यता है। योगीजन प्राण और बुद्धि (साम+अथर्व) के शोधन द्वारा विलक्षण सामर्थ्य अपने में विकसाता है और साधारण मनुष्य वाक् और मन की शुद्धि द्वारा अपने में अद्भुत सामर्थ्य को अनुभव करता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तात्पर्य यह है :—'मनुष्य की उक्त चार शक्तियों का समविकास करने के लिये चारों वेदों का महत्व स्पष्ट है। हर एक मनुष्य को चाहिये कि वह अपनी वाक्शक्ति की पवित्रता ऋग्वेद के मंत्रों (सूक्तों) का अध्ययन व निरन्तर अभ्यास मनन करके करे, अपने मन की शुद्धता यजुर्वेद के मंत्रों का अध्ययन व प्रशस्त कर्म का अनुष्ठान करके करे, अपनी जीवन शक्ति का सुधार सामवेद के मंत्रों के अध्ययन व परब्रह्मोपासना द्वारा करे तथा अपनी बुद्धि का विकास (आत्मोन्नति) अथर्ववेद के मन्त्रों के अध्ययन और चित्तवृत्तियों के निरोध से सम्पादित करे। इस प्रकार मनुष्य उच्च और श्रेष्ठ बन कर अपना और जनता का अभ्युदय व निःश्रेयस प्राप्त करे।

२. वेदों का रचनाकाल :

(तिलकमत की विवेचना)

गुरुजनों से वेदाध्ययन करते समय, 'वेदों के आविर्भाव' के काल के सम्बन्ध में अक्सर चर्चा चलती थी [ई० सन् ३६ से ३८ तक]। उस समय श्री लोक मान्य बाल गङ्गाधर द्वारा अपने 'ओरायन' नामक पुस्तक में ऋग् मं० १०, सूक्त ८६ के आधार पर कल्पित "ई० सन् से चार सहस्र वर्ष पूर्व वेदों की उत्पत्ति हुई" ऐसी चर्चा होती थी। उनका कहना है कि "क्योंकि उक्त सूक्त में मृगशीर्ष नक्षत्र पर वसन्त सम्पात का वर्णन है और यह सम्पात ई० सन् से चार सहस्र वर्ष पूर्व था, इसलिये उसी समय के लगभग ऋचाओं की रचना हुई।" उनका यह मत भी ज्योतिष् के अनुसार है कि "यह सम्पात चल है अर्थात् भिन्न भिन्न नक्षत्रों पर आता रहता है।"

उस समय मैंने गुरुजनों से यह शङ्का की थी कि इसका क्या प्रमाण है कि इसी वसन्त सम्पात का वर्णन है। हो सकता है कि उससे पूर्व के किसी वसन्त सम्पात का वर्णन है। या यह वसन्त सम्पात को प्राकृत घटना का वर्णन है जोकि किसी समय भी लिखा जा सकता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस सम्बन्ध में 'वैदिक ज्योतिष् शास्त्र' में प्रसिद्ध आर्य विद्वान् स्वामी ब्रह्ममुनि (उस समय उनका नाम प्रियरत्न आर्ष था। ई० सन् १९४६ में यह ग्रन्थ लिखा गया है। द्र० पृ० १३-१७ तक।) लिखते हैं कि·····"यह कैसे मान लिया जावे कि ई० सन् से चार सहस्र वर्ष पूर्व ही वेदों की रचना हुई जबकि श्री तिलक यह भी मानते हैं कि वसन्त सम्पात चलता है अर्थात् बारी बारी से एक एक नक्षत्र पर आता है और सम्पात प्रदक्षिणा (पूरा सम्पात चलनचक्र) २५८२० वर्ष अर्थात् लगभग २६००० वर्ष में होती है, तब ई० सन् से चार सहस्र वर्ष पूर्व ही क्यों ? उससे पहली सम्पात-प्रदक्षिणा में जब मृगशीर्ष नक्षत्र पर वसन्त सम्पात था, जो कि ई० सन् से लगभग ३०००० वर्ष पूर्व बैठता है, अथवा उससे भी पहली सम्पात प्रदक्षिणा में जो कि ई० सन् से ५६००० वर्ष पूर्व किं वा उससे भी पहली सम्पात प्रदक्षिणा में लगभग ८२००० वर्ष पूर्व मृगशीर्ष नक्षत्र पर वसन्त सम्पात था, एवं जहां तक पूर्व जा सकते हैं प्राचीन से प्राचीन अति प्राचीन सम्पात प्रदक्षिणा में जो मृगशीर्ष नक्षत्र पर वसन्त सम्पात था, उसे वेदों का रचनाकाल माना जावे। न माना जावे, इस में कोई हेतु न होने से ई० सन् से चार सहस्र वर्ष पूर्व वाले मृगशीर्ष नक्षत्रस्थ वसन्त सम्पात को ही वेदों का रचनाकाल बतलाना हेत्वाभास है।

[दूसरे] यदि उक्तसूक्त में मृगशीर्ष नक्षत्र पर वसन्त सम्पात का वर्णन होना ही वेदों के काल का निर्णायक हेतु है, तब भविष्य में अन्य कोई विद्वान् ईसा से लगभग २२००० वर्ष पीछे अर्थात् आगे आने वाले आज से २०००० वर्ष पश्चात् मृगशीर्ष नक्षत्र पर हुए वसन्त सम्पात को वेदों का रचनाकाल बतलाने का दावा कर सकेगा। कारण कि उक्त दिया हुआ हेतु उसका भी साधक हेतु बन सकेगा।

२.·····श्रीकृष्ण के [गीता १०।१५] "मैं मासों में मार्गशीर्ष हूं और ऋतुओं में वसन्त" इस वचन से तिलक जी यह सिद्ध करना चाहते हैं कि मृगशीर्ष नक्षत्र पर वसन्त सम्पात था तभी तो कृष्ण जी ने ऐसा कहा·····।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परन्तु इससे यह कहां सिद्ध हुआ कि वेदों का रचनाकाल 'मृग-शीर्ष नक्षत्र पर आया' उक्त वसन्त सम्पात है ? कारण कि कृष्ण जी के समय मृगशीर्ष नक्षत्र पर वसन्त सम्पात था इसका अर्थ तो यही है कि महाभारत के समय मृगशीर्ष नक्षत्र पर वसन्त सम्पात था। वेद तो महाभारत से प्राचीन हैं·····महाभारत से प्राचीन वाल्मीकि रामायण भी है।·····रामायण में भी वेदों की चर्चा ····है।·····तब वेदों की सत्ता·····रामायण से भी पुरातन होने से 'महाभारतीय मृगशीर्ष-नक्षत्रस्थ वसन्त सम्पात वेदों के रचनाकाल का साधक एवं साक्षी न रहा।

३. श्री तिलक ने मृगशीर्षस्थ वसन्तसम्पात से पूर्व के एक और कालका भी वर्णन किया है, जब कि पुनर्वसू नक्षत्र पर वसन्तसम्पात था। उस समय को उन्होंने मृगशीर्ष पूर्वकाल तथा अदितिकाल नाम दिया है·····। और उस अदितिकाल [की कल्पना] का आधार ऐतरेय ब्राह्मण (१-७) बताया है·····। यह एक आश्चर्य की बात है कि वेदों का रचनाकाल तो श्री तिलक 'मृगनक्षत्र पर आया वसन्त सम्पात' बतलावें और वेदों का व्याख्यान करने वाले 'ऐतरेय ब्राह्मण' में मृगशीर्ष पूर्वकाल, पुनर्वसूकाल [अर्थात् अदितिकाल] को देखें, जिसकी अवधि भी उन्होंने ई० सन् से ६००० वर्ष पूर्व की दी है। [यहाँ विचारणीय यह है कि] जब ऐतरेय ब्राह्मण अर्थात् ऋग्वेद के ब्राह्मण का काल मृगशीर्षकाल से पूर्व पुनर्वसूकाल सिद्ध होता है, तब [ऋग् यजु: साम अथर्व संहिता रूप] मूल वेदों का काल इस ऐतरेय ब्राह्मणकाल अर्थात् पुनर्वसूकाल के भी पीछे कैसे हो सकता है? (यहाँ तक का लेख श्री ब्रह्ममुनि स्वामी का है। [ ] में अङ्कित शब्द हमारे हैं।)

४. एक और आश्चर्य की बात है सूक्त में मृगशीर्ष-नक्षत्र तो क्या 'मृगशीर्ष' शब्द भी नहीं है। केवल 'मृग' शब्द·····आया है। सूक्त भर में कहीं इस 'मृग' का विशेषण 'नक्षत्र' शब्द या नक्षत्र का कोई पर्याय शब्द नहीं आया। किन्तु यह मृग शब्द भी 'वृषाकपि'

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(मन्त्र ३) के लिये आया है। सूक्त में वृषाकपि ११ बार और मृग शब्द केवल दो बार आया है। वह भी स्वतन्त्र व्यक्तिवाचक नहीं, किन्तु वृषाकपि का यौगिक विशेषण रूप में (द्र० ऋग्वेदीय सर्वानुक्रमणी)। इसलिये सूक्त में मृगशीर्ष नक्षत्र का वर्णन ही नहीं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि श्री तिलक महाराज का वेदों से वेदों के काल के निर्णय का आधार मृगशीर्ष नक्षत्रस्थ वसन्त सम्पात' को मान, ई० सन् से चार सहस्र वर्ष पूर्व वेदों का रचनाकाल मानना ठीक नहीं।

श्री बालगंगाधर तिलक सदृश विद्वान् का गीता के १०।१५ को आधार बना इस प्रकार की कल्पना करना आश्चर्य का विषय है। वहां गीता में आगे १०।२० में १. "मैं सब भूतों का आदि मध्य अन्त हूं" तथा १०।२२ में "वेदों में सामवेद हूँ" ऐसा वर्णन है। वेद में "तस्माद् यज्ञात्···ऋचः सामानि जज्ञिरे" आया है। यदि श्रीतिलक की युक्ति पद्धति मानें कि इससे स्पष्ट ही सामवेद की सत्ता भूतसर्ग के आदि में सिद्ध होगी।

२. इसी प्रकार आगे १०।२३ में "अष्ट वसुओं में पावक हूं" ऐसा वर्णन है:—

वेद में वसुओं का भी वर्णन है और पावक का भी। ये 'भूम्यप्' हैं आठ वसु (=वासक भौतिक पदार्थ) सर्गादि में भी थे। परिणामतः वेद सर्गादि में बने, यह सिद्ध होगा। यह पदति विचार की ठीक नहीं। इसलिये श्री तिलक महाराज का वेदों में मार्गशीर्ष नाम होने से उसका समय निर्धारित करना समीचीन नहीं।

३—आदि सृष्टि में पांच वर्ष बाद ज्ञान दिया गया।

ऋषि दयानन्द ने वेदों का आविर्भाव सर्गादि में कब हुआ, इस विषय में एक नवीन बात कही है—'आदि सृष्टि में ईश्वर ने बहुत से मनुष्य, पशु, पक्षी [स्त्री पुरुष दोनों] उत्पन्न किये। उन [के व्यवहारों] में अब [वर्त्तमान में दृष्ट] जैसा ज्ञान के कारण और कर्म के कारण भेद न था। उन सब को केवल आहार-विहार (निन्द्रा,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बलवान् से भय) और मैथुन इतना ही विदित था और इन विषयों में भी [मनुष्य पशु आदि] सब प्राणी एक ही से और एक ही रस थे।.....इस आदि सृष्टि में सब मनुष्य [इन्द्रिय चेष्टा आदि व्यवहारों में लगभग] वाल्यावस्था में थे [छोटे बच्चों के समान] उन्हें शासन या प्रतिषेध नहीं लगाये थे। नेत्रों से अपना काम करें अर्थात् सब को देखें। श्रोत्रों से अपना काम करें अर्थात् शब्द सुनें, पांव से अपना काम करें अर्थात् इधर उधर फिरें। इससे और विशेष व्यापार आदि सृष्टि में इन मनुष्यों में नहीं था। ऐसी अवस्था आदि सृष्टि में पांच वर्ष चलती रही, फिर परमात्मा ने मनुष्यों को वेद ज्ञान दिया]। (पूना प्रवचन, पृष्ठ ५९.६०। रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित उपदेश मंजरी)।

इसका अभिप्राय यह है कि सृष्टि उत्पत्ति होते ही उन मानवों को वेद ज्ञान नहीं मिला। अपितु उक्त चार अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा ऋषियों को मिला और उन चारों ऋषियों से मनुष्यों को कुछ काल पश्चात् विधि निषेध का ज्ञान मिला। इसके दो कारण प्रतीत होते हैं—पहिला यह है कि जिन के बुद्धि विकास के लिये ज्ञान दिया है उस मानव समुदाय का इस योग्यता सामर्थ्य वाला हो जाना कि वे इस ज्ञान द्वारा लाभ उठा सकेंगे। एक बालक पाँच वर्ष के बाद सक्षम हो जाता है। ऐसी ही बात वहां समझनी चाहिये।

ऋषि दयानन्द ने संस्कारविधि के उपनयन संस्कार में लिखा है कि "जिसको शीघ्र विद्या बल और व्यवहार करने की इच्छा हो और बालक भी पढ़ने में समर्थ हुए हों तो ब्राह्मण के लड़के का जन्म व गर्भ से पांचवें.....वर्ष में यज्ञोपवीत करे (मनु० २.३७)" क्योंकि एक बालक पांच वर्ष का होने पर शरीर बुद्धि से विद्या ग्रहण के योग्य हो जाता है। इससे भी यही संकेत मिलता है कि पांचवें वर्ष में सामान्य मानव को वेदों को ज्ञान मिलना ऋषि की यह कल्पना सही है।

(दूसरे) सर्गारम्भ में केवल स्त्री पुरुष थे। कोई शिशु नहीं था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पांच वर्ष इकट्ठे रहने पर जो शिशु हुए वे भी लगभग चार वर्ष के हो गये, जो कि विधि निषेध को समझने में कुछ कुछ समर्थ हो गये। वेद का ज्ञान मानव जाति के विकास के लिये होता है। उसके क्रियात्मक व्यहार का प्रारम्भ बिन्दु परिवार है। परिवार सन्तान होने के बाद ही बनता है। इसके बाद ज्ञान पूर्वक व्यवहार प्रारम्भ हो जाता है। इसी में ज्ञान देने की सार्थकता है।

वेद में कुछ ऐसा अभिप्राय प्रगट करने वाला वेद मन्त्र भी है। "(बाधतः) वाणी और ज्ञान को आरम्भ करने वाले मेधावी पुरुष (इन्द्रेण युजा) ज्ञान का योग कराने वाले परमेश्वर के द्वारा (गोमन्तम्-अश्विनम्) ज्ञान प्रकाश वाग् से युक्त और हस्तादि अंगों को कर्म में प्रेरक (व्रजम्) ज्ञान समूह को (निःसृजन्त) प्रयोग करते हैं। वे फिर (ये) अहंभाव युक्त अर्थात् स्वतन्त्र कर्तृत्व वाले मुझ जीव के लिये (सहस्रं ददतः) हजारों ऋचाओं वा ज्ञानों को देने वाले (अष्टकर्ण्यः) आठ कानों वाले अर्थात् चार वेदों के ज्ञान वाले होकर (देवेषु) उज्ज्वल बुद्धि वाले दूसरे देवों में (श्रवः) 'श्रुति' रूप ज्ञान को (अनुत) प्रगट करते हैं।

इस से स्पष्ट है कि 'गोमान्' एवं 'अश्वी' अर्थात् सामर्थ्य युक्त इन्द्रियों वाले होने पर प्रभु से ज्ञान प्राप्त करने की योग्यता होती है। [प्रवक्ता रूप से वेदवित् चतुर्मुख और श्रोता रूप से 'अष्टकर्ण्य' हो सकता है।] यह योग्यता पांच वर्ष सृष्टि के होने पर सम्भव है। इसलिये ऋषि ने मनुष्य के पैदा होने के पांच वर्ष पश्चात् वेद ज्ञान का प्रकाश हुआ, ऐसा माना है। विद्वान् जन विचारें और वेदों का प्रकाश और विस्तार जिस क्रम से हुआ है, उसके लिये ऋ० १०.७१ सूक्त का मनन करना चाहिये।

४. सर्गारम्भ में युवा मनुष्य : उन्हें ज्ञान दिया

सर्गादि में ब्रह्मणस्पति सृष्टिकर्त्ता परमात्मा ने समस्त जनों के कल्याण के लिये अग्नि-वायु-आदित्य-अंगिरा के हृदयों में कल्याणी वाक् वेद का ज्ञान दिया। इसका वेद के आधार पर विवेचन किया है। दो प्रश्न उठते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पहला यह कि ये चार ऋषि उस समय 'युवा' थे या 'शिशु' ? और दूसरे 'सर्गादि' पद से क्या अभिप्राय है ?

अज्येष्ठसो अकनिकष्ठस एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥
ऋ० ५.६०।५॥

सर्गारम्भ में आयु की दृष्टि से परस्पर न एक दूसरे से 'ज्येष्ठ' और न 'कनिष्ठ' सब सौभाग्य के लिये (भ्रातरः) एक दूसरे के भरण होकर वाले होके (सं) समान भाव से बढ़ते हैं। इनके मध्य में (युवा) रजो वीर्य मिश्रण करने योग्य अर्थात् तरुण (पिता) पालक माता पिता थे। जो व्यक्ति कि (स्वपा स्वं+पालयितुं समर्थाः सु+अपाका) अपने पालन में तथा अपने सन्तान पालन में समर्थ था अथवा श्रेष्ठ कर्म का अनुष्ठान करने वाला था और (रुद्रः) दुष्टों व विघ्नों की बाधा को रोकने में समर्थ तगड़ा था। (मरुद्भ्यः) उन ऐसी 'युवा प्रजा' के लिये उस समय (पृश्निः) सुदुघा भूमि अन्न बनस्पति से परिपूर्ण 'अन्नवर्षी' अथवा आकाश समयानुसार 'जलवर्षी' तथा सूर्य सुखद 'प्राणवर्षी' होने से (सुदिना) उनके 'अच्छे दिन' थे। इनका मन्त्र 'सामाजिक साम्य' बताने वाला अर्थ प्रसिद्ध है। हमने जो अर्थ दिया है, उस पर भी विद्वान् विचारें। 'ज्येष्ठ' 'कनिष्ठ' शब्द आयु सम्बन्धी बड़प्पन-छुटपन को बताते हैं, गुण सम्बन्धी उच्चता नीचता को नहीं। उसके लिये श्रेष्ठ-कनिष्ठ शब्द का प्रयोग है।

आ युवानः कवयो यज्ञियासो मरुतो गन्त गृणतो वरस्याम् ।
अचित्रं चिद्धि जिन्वथा वृधान्त इत्था नक्षन्तो नरो अङ्गिरस्वत् ॥
ऋ० ६।४९।११ ॥

ईश्वर कहता है कि—हे युवा पुरुषो (कवयः=कं वयति) मोक्ष की ओर जाने वाले, यज्ञिय अर्थात् सत्यप्रिय व्यवहार करने वाले जनो! (गृणत) ज्ञानोपदेश करने वाले मुझ परमात्मा की (वरस्यां)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्त्री करणीय अर्थात् सर्वथा शुद्ध ज्ञान को आगन्त हृदय में ग्रहण करो। और (नरः) हे ऐसे भोगों में न रमने वाले ज्ञानियों! (अचित्रं) सामान्य चेतना शक्ति वाले जन को इस ज्ञान से तृप्त करो। कैसे? इस प्रकार (वृधन्तः) सौभाग्य के लिये परस्पर भाई बन संबर्धित=बढ़ते-बढ़ाते हुए तथा (अङ्गिरस्वत्) वायु वा विद्युतरंग वा प्राणों के समान (नक्षन्तः) स्थान स्थान पर जाते हुए अर्थात् प्रजा जनों में व्याप्तप्रविष्ठ होते हुए।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि सर्गादि में 'युवा' स्त्री पुरुष 'पिता' अर्थात् माता पिता रूप में उत्पन्न हुए। सब समान वयस्क थे। उनमें जो 'कवि यज्ञिय' थे उनको प्रभु ने ज्ञान दिया। उन्होंने घूम घूमकर (अचित्रं) सामान्य जनको इससे तृप्त किया या प्रीतिपूर्वक सेवन कराया। इस विषय में ऋ० ८.३०.१, ऋ० ४.१ १२. तथा अथर्व १०.८ २८ मन्त्र भी देखने चाहियें।

५-सृष्टि सम्वत्

दूसरा विषय 'सर्गादि' पद से सम्बन्ध रखता है। जो थोड़ा सा विचार किया है, लिखते हैं। मनुः १।७३ के अनुसार "जो प्रसंग एक सहस्र दिव्ययुग का 'ब्राह्मदिन' और उतने ही परिमाण में 'ब्रह्मरात्रि' की अवधि जानता है, वही 'अहोरात्रविद्' है।" सूर्य सिद्धान्तनुसार (अ० १।१०)—"इस प्रकार एक सहस्र दिव्ययुग का एक 'कल्प' होता है,

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणोः विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥
—महा० आ० पा० ८।१७ ॥

इसे ब्राह्मदिन कहते हैं, और उतनी ही ब्राह्मरात्रि होती है।" जिसके अन्त में 'भूतसर्ग' अर्थात् चराचर का नाश हो जाता है।

भारतीय ज्योतिर्विदों के अनुसार इस प्रकार 'एक सहस्र दिव्य-युग' अर्थात् ब्राह्मदिन सृष्टि की अवधि है। यथा—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कियता स्कम्भः प्रविवेश भूतं कियद् भविष्यदन्वाशयेऽस्य ।
एकं यदङ्गमकृणोत् सहस्रधा कियता स्कम्भः प्रविवेश तत्र ।।
—अथर्व० १०.७.६।।

"यह स्कम्भ भूतकाल में कितने अंश से प्रविष्ट है ? और भविष्य में कितने से व्याप्त है ? यदि वर्त्तमान में यहाँ अपने एक अंग को 'सहस्रका धारक' प्रगट किया है, तो वहां भविष्य में कितने अंश से प्रविष्ट है ?"

इससे ऐसा प्रतीत है कि ज्येष्ठ ब्रह्म प्रभु का एक अंग 'सहस्रयुग' अर्थात् सृष्टि को प्रगट करने वाला है। भाव यह है कि 'सृष्टि की अवधि' एक सहस्र दिव्य युग परिमित है।

इसकी वर्षों में गणना—

शतं ते युतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृष्मः ।
इन्द्राग्नी विश्वेदेवास्ते नु मन्यन्तामहृणीयाः ।। अथर्व० ८ २.२१

"·····शून्य बढ़ाते हुए १० सहस्र सैंकड़ा (१०००० × १००) अर्थात् (१०००००० दशलक्ष तक पहुंचने पर उसे ४३२० बार रखकर जोड़ने से ४३२०००००० प्राप्त होते हैं—इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि सृष्टि चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष तक बनी रहेगी।

(लेखराम आर्य पथिक ग्रन्थावली।)

ऐसा ही सब प्राचीन आर्यज्योतिषियों व अब ऋषि दयानन्द महाराज ने माना है। इस कालगणना क्रम का जो विस्तार है, वह ऋषिदयानन्द के मन्तव्यानुसार नीचे लिखा जाता है।

"सहस्रस्य प्रमासि०) 'यजुः [१५।६५] के अनुसार सब संसार की सहस्र संज्ञा है। पूर्वोक्त ब्राह्मदिन और ब्राह्म रात्रि की भी सहस्रसंज्ञा ली जाती है, क्योंकि यह सब सामान्य अर्थ में विद्यमान है। हे परमेश्वर ! आप इस हजार चतुर्युगी के दिन और [इतनी ही] रात्रि के प्रमाण अर्थात् निर्माण करने वाले हो। शतपथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(७।५।२।१३) में भी आया है कि इस सम्पूर्ण जगत् का नाम 'सहस्र' है।" ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका।

इस सृष्टि में [अब] सातवां वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। स्वायम्भव चाक्षुष [आदि] ये छः तो बीत गये हैं और सावर्णी आदि सात मन्वन्तर आगे दीये जावेंगे। ये सब मिलके चौदह मन्वन्तर होते हैं। एकहत्तर चतुर्युगियों का एक मन्वन्तर होता है। ऐसे चौदह मन्वन्तर एक ब्राह्मदिन अर्थात् सृष्टि में भोगे जाते हैं। इतना ही समय ब्राह्मरात्रि अर्थात् प्रलय का भी होता है।"—ऋ० भा० भूमिका

(क) "उसकी गणना इस प्रकार से है कि····· सत्रह लाख, अट्ठाइस हजार वर्षों का नाम सत्ययुग; बारह लाख, छानवे हजार वर्षों का नाम त्रेता; आठलाख, चौसठ हजार वर्षों का नाम द्वारा और चार लाख, बत्तीस हजार वर्षों का नाम कलियुग रखा है।··· इन चारों युगों के (४३२००००) तितालीस लाख, बीस हजार वर्ष होते हैं, जिनका नाम एक चतुर्युगी है। ऐसी इकहत्तर चतुर्युगियों के अर्थात् (३०६७२००००) तीस करोड़, सतसठ लाख, बीस हजार वर्षों की एक मन्वन्तर संज्ञा है।····· जो पूर्व चतुर्युगी लिख आये हैं, उन एक हजार चतुर्युगियों की ब्राह्मदिन संज्ञा रखी है। इस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि का समय ४३२०००० × १००० = ४३२०००००० अर्थात् चार अरब, बत्तीस करोड़ होता है। उतनी ही चतुर्युगियों की रात्रि संज्ञा जाननी चाहिये।"

(ख) "सो सृष्टि की उत्पत्ति करके एक हजार चतुर्युगी पर्यन्त ईश्वर इस को बना रखता है, इसी का नाम ब्राह्मदिन है और हजार चतुर्युगी पर्यन्त सृष्टि को मिटा के प्रलय अर्थात् [मूल-प्रकृति] कारण में लीन रखता है, उसका नाम ब्राह्म रात्रि रखा है।·····ब्राह्म दिन और ब्राह्मरात्रि अर्थात् ब्रह्म जो परमेश्वर उसने संसार के 'वर्त्तमान' और 'प्रलय' की संज्ञा की है। इसीलिये सृष्टि का नाम ब्राह्मदिन और प्रलय का नाम ब्राह्मरात्रि है।"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(ग)....."यह जो वर्त्तमान ब्राह्मदिन है, उसके (१९६०८५-२९७६) अर्थात् एक अरब, छयानवे करोड़, आठ लाख, बावन हजार नौ सौ छहत्तर वर्ष इस सृष्टि की आयु तथा वेदों की उत्पत्ति में व्यतीत हुए हैं [अर्थात् यह वर्त्तमान वर्ष ७७वां है, जिसको आर्यलोग विक्रम का (१९३३) उन्नीस सौ तेत्तीसवाँ सम्वत् कहते हैं।] और (२३३३२२७०२४) दो अर्ब, तेत्तीस करोड़, बत्तीस लाख, सत्ताइस हजार, चौबीस वर्ष "इस सृष्टि को भोग करने के बाकी रहे हैं।"

(घ) "इस प्रकार आर्यों ने ज्योतिष् शास्त्र में एक क्षण और निमेष से लेके एक वर्ष पर्यन्त यथावत् संख्या [अर्थात् काल गणना] की है। सो सृष्टि की उत्पत्ति से लेके आज (सम्वत् १९३३) पर्यन्त दिन दिन गिनते और क्षण से लेके कल्पान्त की गणित विद्या को प्रसिद्ध करते चले आते हैं अर्थात् परम्परा से सुनाते-सुनते, लिखते-लिखाते और पढ़ते-पढ़ाते.....हम लोग चले आते हैं। यही व्यवस्था सृष्टि और वेदों की उत्पत्ति के वर्षों की ठीक है और सब मनुष्यों को इसी को ग्रहण करना योग्य है।" —ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका।

अब वि० सं० २०२६ है। ऋषि दयानन्द ने सं० १९३३ में उपरोक्त विवरण दिया था। तदनुसार १९६०८५२९७६+९३ अर्थात् १९६०८५३०६९ एक अरब, छयानवे करोड़, आठ लाख, त्रेपन हजार, उनहत्तर वर्ष वेदों की और जगत् की उत्पत्ति को हो गये हैं और यह सत्तरवां (७०) चल रहा है। [तुलना नहीं ऋग्० वे० भा० भू०)

हमारी विनम्र सम्मति में ऋ० वे० भा० भू० में लिखे वेदों की और जगत् की उत्पत्ति' तथा अन्यत्र आये....."इस सृष्टि की तथा वेदों की उत्पत्ति"...इन दो वाक्यों में आये 'जगत्' व 'सृष्टि' पद का अर्थ 'कल्पारम्भ' अर्थात् प्रलयान्तर सृष्टि रचना का आदि यह नहीं है। यहाँ इसका संकेत मानव उत्पत्ति-काल से लगता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

क्योंकि यह सर्वसम्मत मत है और ऋषिदयानन्द भी मानते हैं कि "मनुष्य भूतल पर प्रादुर्भाव से पूर्व पृथिवी आदि तथा अन्न वनस्पति आदि सब प्रगट हो चुके थे। क्योंकि इनके बिना मनुष्य का जीवन अर्थात् स्थिति व पालन नहीं हो सकता था। (द्र० सत्या० प्र० ८ समु०। सृष्टचोत्पत्ति प्रकरण।")

अब प्रश्न यह है कि यह पृथिवी मनुष्य से कितने समय पूर्व बनी। इसका समाधान ऋ० १०। ९७ के निम्न मन्त्र में है :—

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।
मनै नु बभ्रणामहं शतधामानि सप्त च॥ ऋ० १०.९७.

"जो (पूर्वाः पालक रसों से पूर्ण ओषधियाँ अर्थात् अन्न वनस्पतियां (देवेभ्यः) ज्ञानवान् प्राणी मनुष्यों के हितार्थ उनसे तीन युग पहले हुईं, उन (बभ्रूणाँ) पक्के होकर पीली-भूरी अथवा देह का भरण पोषण करने वाली ओषधियों के सौ धामों=प्रभावों तेजो और सातों धारक सामर्थ्यों को अथवा शतवर्षी आयु बनाने वाले बलों तथा 'अन्न···वीर्य' तक सप्तधातुओं में परिवर्तित होने के गुणों को मैं निश्चयपूर्वक जानूं या जानता हूं।"

इस मन्त्र से स्पष्ट है कि मनुष्य से 'ओषधि की भण्डार पृथिवी की उत्पत्ति 'तीन दिव्य युग' पूर्व हुई। वही वस्तुतः कल्पारम्भ या युगादि का काल है। निरुक्तकार ने दैवतकाण्ड ९ अ० २२ ख० ३ पा० २२ शब्द) में इसका अर्थ "या ओषधयः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रीणि युगानि पुरा" अर्थात् "जो ओषधियाँ पूर्वकाल में उत्पन्न हुईं, देवों से तीन युग पहले" ऐसा किया है। इसका अभिप्राय मन्त्रानुसार यह हुआ कि "मनुष्य की उत्पत्ति वनस्पत्ति युक्त पृथिवी आदि की उत्पत्ति से तीन दिव्य युग पश्चात् हुई।"

ऊपर हमने लिखा है कि ४३२०००० वर्षों की एक चतुर्युगी ही एक महायुग या दिव्ययुग होती है। ऐसा ही मन्वादि स्मृतिकारों ने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

माना है।(-मनुस्मृति अ० १। श्लो.६१—७३॥ ७९.८०। ऋ० वे० भा० भू० में उद्धृत।

तीन युगों के ४३२०००० × ३ = १२९६०००० अर्थात् एक करोड़, उन्तीस लाख, साठ हजार वर्ष होते हैं। अर्थात् युगादि या कल्पारम्भ के १२९६०००० वर्ष पश्चात् मानव और वेद की उत्पत्ति हुई।

ऋषि दयानन्द के मतानुसार अब १९६०८५३०६० वाँ वर्ष वेदोत्पत्ति का चल रहा है। इस १९६०८५३०७० में तीनयुगों के १२९६०००० वर्ष जोड़ देने से, सृष्टि सम्वत् या युगादि सम्वत् अर्थात् जब प्रलयानन्तर सृष्टि की रचना प्रारम्भ हुई वह समय निकलेगा अर्थात् १९७३८१३०७० एक वृन्द, सन्तानवे करोड़, अडतीस लाख तेरह हजार, सत्तर सृष्टि सम्बत् इस समय है। यह सारा विचार हमने स्वामी आत्मानन्द तीर्थकृत 'वेदानुसार वास्तविक सृष्टिसम्वत्' [आर्षयोगाश्रम, खरखौदा(जि० मेरठ) उ० प्र०] के आधार पर किया है।

भारतीय परम्परा तथा ऋषि दयानन्द के मतानुसार वेद अपौरुषेय=ईश्वर प्रदत्तज्ञान हैं, जिसकी 'सृष्टि के आदि में प्रसिद्धि (व्यक्ति आविर्भाव) और प्रलय में जगत् के न रहने से अप्रसिद्धि (अव्यक्ति तिरोभाव) होती है [और वे] इस कारण नित्यस्वरूप ही बने रहते हैं। (ऋ. भा. भू.)

यहां 'सृष्टि के आदि में' का भाव 'प्रलयान्तर सर्गारम्भ न होकर 'मानवोत्पत्ति के साथ' ऐसा समझना चाहिये। क्योंकि वेदों के ज्ञान को हृदय में धारण करने वाले ऋषि तो उस समय थे नहीं। वे तो तीन युग पश्चात् हुए। उस आदि समय में वेदों का ज्ञान किसे दिया? ज्ञान किसी आधार के विना रह नहीं सकता; क्योंकि गुण के आश्रय के लिये गुणी का होना जरूरी है। वेदों के आविर्भाव के लिये मानव की सत्ता आवश्यक है। सृष्टि रचना के प्रारम्भ में

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मानव था नहीं वह तीन युग पश्चात् आया। जिस समय वह उत्पन्न हुआ; उसी समय उसे परमात्मा ने यह वेद ज्ञान दिया। उस वेदाविर्भाव का काल इस समय १९६०८५३०६० वर्ष है; यही मानव उत्पत्ति का काल है। ऐसा विचार करने से ऋषि दयानन्द के लेखों की पूर्ण युक्तियुक्त संगति लग जाती है।

वेद सम्वत् या मानव सम्वत् १९६०८५३०६० वर्ष है। इतने वर्ष भोग चुके हैं।

युगादि या सृष्टयब्द १९७३८१३०७० वर्ष है। इतने वर्ष भोग चुके हैं।

सृष्टि की आयु या ब्राह्म दिन की अवधि ४३२०००००० वर्ष है। पूर्ण भोग।

सष्टि की शेष आयु २३४६१८६९३० वर्ष है।

शेष वेद सम्वत् या मानव-काल २३३३१४६९३० वर्ष है। इतने वर्ष भोगने शेष हैं। कुल वेदाविर्भाव या मानव-सत्ता का काल ४३९४०८०००० वर्ष है। अर्थात् जीव का मानवदेह धारण कर प्राक्तन कर्मों के भोग का काल तथा स्वतन्त्र कर्म करने का समय इतना है

जब मनुष्य नहीं रहता, अर्थत् "जब सृष्टि का प्रलय होता है, तब तब वेद उस [ईश्वर) के ज्ञान में सदा बने रहते हैं (ऋ. भू. भूमिका)।" ऐसा ही ऋग् १।१६४।३९ में लिखा है:- "जिस परमात्मा में सब सूर्य चन्द्र भूमि आदि देव आधेय रूप से स्थित हैं, उस परम अक्षर सर्वव्यापक उनके ज्ञान में ऋचायें=वेदविद्या सदैव वर्त्तमान है।" ....."वही परमेश्वर सब सत्यविद्या का आदि मूल है।"

(प्रश्न) ऊपर जो आपने कालगणना लिखी है, यह तभी तो सम्भव है, जबकि जगत् की रचना क्रमशा अर्थात् एक पदार्थ के बाद दूसरा, फिर तीसरा, इस प्रकार सृष्टि बनी हो। ऋषि दयानन्द

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वे ऋ० १.१६४.१५ में लिखा है कि "जो इस जगत् में पदार्थ हैं, वे सब ब्रह्म के निश्चित किये हुए व्यवहार से एक साथ उत्पन्न होते हैं, यहां रचनामें क्रम की आकांक्षा नहीं है। क्योंकि परमेश्वर के सर्व व्यापक और अनन्त सामर्थ्यवाला होने से।"

ऐसी ही ऋग्: ६।४८। २२; से भी प्रतीत होता है। इसमें अन्य ग्रन्थों के प्रमाण भी हैं। इससे स्पष्ट है कि परमात्मा की रचना विशेष में 'कालक्रम की आकांक्षा नहीं। सब कुछ (सकृत् या युगपत्) एक साथ उत्पन्न हो जाता है।

(उत्तर) १. ऋषि दयानन्द ने ऋ० १.१६४.१५ में उसी वाक्य के आगे लिखा है कि—"जैसे क्रम से [संस्कृत में 'क्रमेण'] ऋतु वर्त्तमान हैं और अपने अपने चिह्नों समय समय में उत्पन्न करते हैं, वैसे से उत्पन्न होते हुए पदार्थ अपने अपने गुण को प्राप्त होते हैं।" ऐसे ही ऋ० ६।४८।२२ में लिखा है कि—"सूर्य एक वार उत्पन्न होता है, भूमि एक वार उत्पन्न होती हैं और अन्तरिक्षाऐं दूध और जल एक बार उत्पन्न होता है।"

सब स्थलों को मिला कर पढ़ने से स्पष्ट है कि सूर्य आदि पदार्थ अपने अपने रूप में 'एकबार अर्थात् पूरे के पूरे एक ही घटन में' उत्पन्न हुए। जैसे कि क्रम से ऋतु अपने अपने चिह्नों के साथ उत्पन्न होते हैं यह भाव नहीं कि 'सबके सब पदार्थ एक बार एक साथ एक ही क्षण में उत्पन्न हुए।

२. देश और काल दोनों सृष्टि रचना में साधारण कारण हैं। काल का छोटे से छोटा रूप 'क्षण' है और देश का 'बिन्दु'। यदि सृष्टि एक क्षण में होती है अर्थात् काल के विस्तार की अपेक्षा नहीं रखती, तो वह देश के विस्तार अर्थात् चारों ओर की अपेक्षा क्यों रखती है ? दूसरे सृष्टि का आदि 'क्षणिक' और प्रलय=अन्त 'क्षणिक' तो मध्य अर्थात् 'स्थिति' क्षणिक क्यों नहीं ? इसका विस्तार एक सहस्र युग पर्यन्त क्यों ?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

३. सृष्टि-प्रलय की समानता 'आहर्निश' से दी जाती है। ये अकस्मात् नहीं होते। धीरे धीरे एक स्थिति से दूसरी स्थिति में आते हैं। इसी प्रकार सृष्टि के पदार्थ क्रम से ऋतुओं की लहर समय-समय में अपने अपने गुणों के साथ प्रगट होते हैं (द्र० ऋग् १।१४६।१५)। (तुलना करें सत्यार्थप्रकाश ८ वें समुल्लास के सृष्टि प्रकरण से)।

४. ऋषि दयानन्द ने लिखा है—"(प्रश्न) उस परमेश्वर और प्रकृति से आकाश अवकाश अर्थात् जो कारण रूप द्रव्य सर्वत्र फैल रहा था, उसको इकट्ठा करने से अवकाश उत्पन्नसा होता है ..... आकाश के पश्चात् वायु, वायु के पश्चात् अग्नि, अग्नि के पश्चात्, जल, जल के पश्चात् पृथिवी, पृथिवियों से ओषधि ओषधियों से अन्न, अन्नसे वीर्य,वीर्य से पुरुष अर्थात् शरीर उत्पन्न होता है।"[इसे सच्चा मानें या झूठा]।

आगे ऋषि लिखते हैं—(उत्तर)..... जब महा प्रलय होता है उसके पश्चात् आकाशादि क्रम अर्थात् जब आकाश और वायु का प्रबल नहीं होता और अग्न्यादि का होता है, अग्न्यादि क्रम से और जब विद्युत अग्नि का भी नाश नहीं होता, तब जल क्रम से सृष्टि होती है। (सत्यार्थप्रकाश ८ वां समुल्लास)।

अनादि नित्य स्वरूप सत्व, रजस और तमोगुणों की एकावस्था रूप प्रकृति से उत्पन्न जो परम सूक्ष्म पृथक् पृथक् वर्त्तमान पंच तत्त्वावयव विद्यमान हैं, उन्हीं [के]..... संयोग विशेषों से अवस्थान्तर—[अर्थात्] सूक्ष्म [से] स्थूल बनते बनाते विचित्र रूप बनी है। (सत्यार्थप्रकाश ८ वां समुल्लास)

.....जब सृष्टि का समय आता है,]तब परमात्मा उन परम सूक्ष्म पदार्थों को इकट्ठा करता है। [सूक्ष्म से स्थूल बनते बनाते] .....क्रम से पंच स्थूल भूत जिनको हम लोग प्रत्यक्ष देखते हैं, उत्पन्न होते हैं। उनसे नाना प्रकार की ओषधियां, वृक्ष आदि, उनसे अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से शरीर होता है। .....इत्यादि प्रकार सृष्टि के बनाने और बनने में है।.....इसी प्रकार क्रम से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मिल कर भूगोलादि परमात्मा बनाये हैं (सत्यार्थप्रकाश ८ वां समुल्लास)।

आगे फिर लिखते हैं। (प्रश्न) मनुष्य सृष्टि प्रथम हुई वा पृथिवी आदि की? (उत्तर) पृथिवी आदि की। क्योंकि पृथिव्यादि के बिना मनुष्य की स्थिति और पालन नहीं हो सकता। (सत्यार्थप्रकाश ८ वां समुल्लास)।

इससे स्पष्ट है कि ऋषिदयानन्द का अभिप्राय 'क्रम से सृष्टि की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय' का है।

(प्रश्न) तो 'क्रमाकांक्षा नहीं' और 'सकृत्=युगपत्' इन पदों का भाव क्या है? हमारी सम्मत्ति में इसका अभिप्राय भिन्न है। वर्त्तमानवै ज्ञानिक सृष्टि के सब पदार्थों का भी 'क्रमिक विकास' मानते हैं। ऋषि इसका खण्डन करते हैं, वे अनादि-अनन्त काल से 'एकरूप' हैं, जब भी अपने अपने समय उत्पन्न होते हैं, 'एकबार' ही उत्पन्न होते हैं। इनमें भेद वा विकार नहीं आता; जैसाकि 'पदार्थों के क्रमिक विकास' के सिद्धान्त को मानते हैं। (सत्यार्थप्रकाश ८ वां समुल्लास)।

विद्वज्जन विचारें और सत्य का दर्शन करावें।

आर्यमर्यादा साप्ताहिक का १०) वार्षिक शुल्क भेज ग्राहक बनिये तथा अपने मित्रों को बनाइये

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लेखक महोदय का परिचय

इस 'वेद स्वरूप निर्णय' विशेषाङ्क के लेखक श्री मदनमोहन विद्यासागर वैदिकवाङ्मय व आर्य सिद्धान्त शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् तथा गंभीर चिन्तक हैं। आपका जन्म २१ जरवरी सन् १९१५ को श्रीनगर में हुआ है। आप विश्व में वेदों का नियमित शिक्षण देने वाली एक मात्र संस्था गुरुकुल-कांगड़ी विश्वविद्यालय (हरद्वार, उ प्र.) के उन सुयोग्य स्नातकों में से हैं, जिन्होंने वैदिक साहित्य के अनुशीलन तथा निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

यह ग्रन्थ उनके ठोस अध्ययन तथा वर्षों के निरन्तर चिन्तन के उपरान्त लिखा गया वेद विषयक एक प्रामाणिक सुन्दर ग्रन्थ है। यद्यपि अनेक विद्वानों ने इस विषय पर भिन्न-भिन्न प्रकार से व्याख्या की है, परन्तु इसमें विद्वान् लेखक ने जिस दृष्टिकोण से वेदों को स्वरूप निर्णय में वेदों की अन्तः शाक्षी का विश्लेषण किया है। वह सर्वथा नया है। लक्ष्य वेद धर्म व अध्यात्म विद्या के प्रचार व प्रसार का हो रहा है। भारत के बाहर भी आप ब्रह्म-देश के रंगून, माण्डले आदि नगरों, पूर्वी अफ्रीका के केन्या, युगाण्डा तथा तांजानिया जंजीवार यम्बा और चीन की सीमा लाशो तक में वेद-धर्म, वैदिक संस्कृति के प्रसारार्थ भ्रमण कर चुके हैं।

एक उत्तम लेखक होने के अतिरिक्त, आप सुयोग्य प्रभावशाली वक्ता भी हैं। आपके अध्यात्म-प्रवचन वेद, उपनिषदादि की विद्वत्ता पूर्ण धारावाहिक विवेचनाएँ जनता में बहुत लोकप्रिय हैं। आप जहां संस्कृत और हिन्दी के विद्वान् हैं, वहां आप का अंग्रेजी, तेलुगु व पंजाबी भाषा पर भी अधिकार है। आप विशेषकर आन्ध्रप्रदेश में वैदिक धर्म के उन्नयन तथा विकास के लिये गत तीस वर्षों से सतत प्रयत्नशील हैं। आप का स्थिर-निवास है—

—प्रेम मन्दिर महर्षिदयानन्द मार्ग, नारायणगुडा
हैदराबाद २९ (आ० प्र०)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्य मर्यादा के स्वामित्व का विवरण

[फार्म ४—नियम ८ के अनुसार]

१. प्रकाशन स्थान—१५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली-१

२. प्रकाशन अवधि—प्रति सप्ताह

३. मुद्रक का नाम—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री
(क्या भारत का नागरिक है;)—हां
(यदि विदेशी है तो मूल देश) = ×
पता—सम्राट् प्रेस, पहाडी धीरज, देहली-६

४. प्रकाशक का नाम—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री
(क्या भारत का नागरिक है ?)—हां
(यदि विदेशी है तो मूल देश)—×
पता—सम्राट् प्रेस पहाड़ी धीरज देहली-६

५. सम्पादक का नाम—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री
(क्या भारत का नागरिक है ?)—हां
(यदि विदेशी है तो मूलदेश)—×
पता—सम्राट् प्रेस, पहाड़ी धीरज देहली-६

६ उन व्यक्तियों के नाम व पते
जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब
गुरुदत्त भवन, जालन्धर
(पंजाब)
(प्रधान—प्रो. रामसिंह एम.ए.)

मैं, जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री
ता० १.३.१९७० ई० प्रकाशक के हस्ताक्षर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

A-1 A-2
A-1 A-2
A-1 A-2

IN THE HIGH COURT OF DELHI AT NE
(Ordinary Civil Original Jurisdiction)

In the matter of Suit No. 286 of 1969
Suit for recovery of Rs. 59,000/-
Tara Chand Aggarwal.....Plaintiff
Sh. Inder Dev Gupta.....Defendant.
To—Sh. Inder Dev Gupta S/o Sh. Yog Dhian
877, East Park Road, DELHI.

WHEREAS it has been shown to the satisfac
Court that it is not possible to serve you in the ordi
therefore, this notice is given by advertisement directing y
to make appearance in the Court on the 10th day
March, 1970.

TAKE NOTICE that in default of your apperance on
day beforementioned, the suit will be heard and determi
in your absence. Dated this 19th day of February, 19

S/d—(RAM PARKASH BANSA
Assistant Regist

Seal of Court

आयुर्वेद का चमत्कार

१—वासा हरीतकी [अवलेह] खांसी, दमा, और यक्ष्मा के
अचूक औषधि मूल्य १०) किलो

२—वरदा [पुत्रौषधि] तीसरे मास के प्रारम्भ में प्रातः सेव
अवश्य पुत्र होगा। मूल्य १०)

नोटः—विवाह के पश्चात् जिनके सन्तान नहीं वे पत्र व्यव
करें या मिलें। दवाई कोर्स तीन मास।

पता— श्यामसुन्दर स्नातक आयुर्वेदालंकार, आर्यसमाज दी
हाल दिल्ली

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए जगदेवसिंह सिद्धान्ती श
द्वारा सम्राट् प्रेस, पहाड़ी धीरज, देहली-६ में मुद्रित
१५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली-१ से प्रकाशित

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi